# कौन थे वे

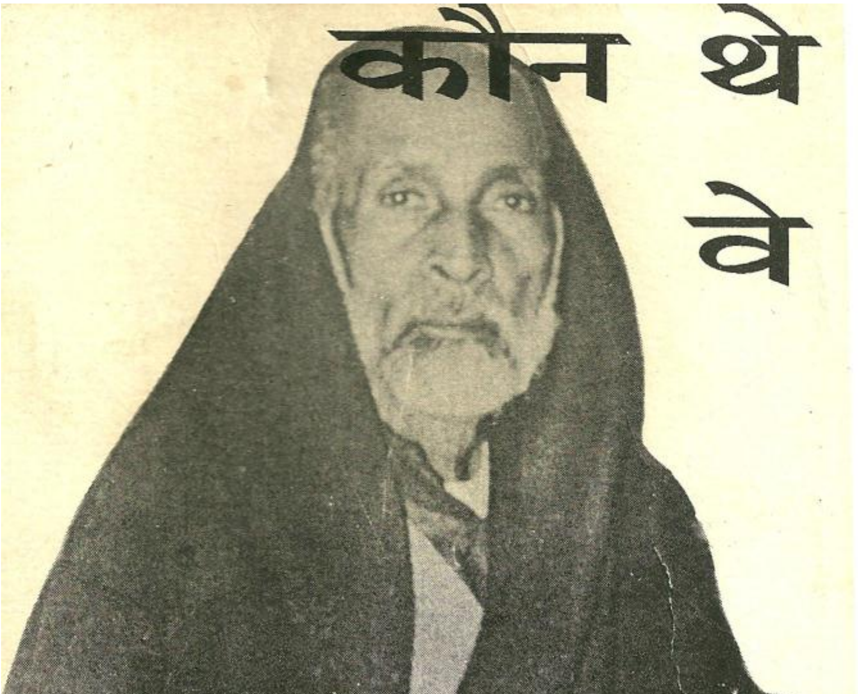

श्री रामचन्द्र जी महाराज
शाहजहांपुर (उत्तर प्रदेश)

-कस्तूरी

# कौन थे वे

★

लेखिका

**कस्तूरी चतुर्वेदी**

★

प्रकाशक :

**श्री जी० डी० चतुर्वेदी**

सी०–830-A, महानगर

एच० रोड, लखनऊ

प्रथम संस्करण, मार्च, १९८२
११०० प्रतियाँ
द्वितीय संस्करण, फरवरी, १९९६
५०० प्रतियाँ

मूल्य—३५ रुपये

प्रकाशक :
**श्री जी० डी० चतुर्वेदी**
सी०-830-A, महानगर
एक्स० रोड, लखनऊ

मुद्रक :
**अग्रवाल प्रेस**
३१६, मोतीनगर, लखनऊ

कु० कस्तूरी चतुर्वेदी

श्री ईश्वर सहाय जी

# आमुख

आज मन उन अभ्यासी भाई के बारे में भी दो शब्द लिखने का लोभ संवरण नहीं कर पा रहा है जिन्होंने इस पुस्तक के लिखने का विचार मुझे दिया है ''जीजी'', आप बाबूजी महाराज के विषय में; उनके साथ उठने-बैठने व्यवहार तथा पारिवारिक-रहन-सहन के बारे में जितना कुछ भी जानती हैं, उसे लिख डालिये, ताकि हमारी आने वाली पीढ़ियाँ उनके विषय में कुछ तो जान सकेंगी।'' उन भाई ने पुन: मेरे अन्दर इस विचार को क्रियान्वित होने का हौसला बढ़ाया और ऐसी पुस्तक की जरूरत है इस बात पर पुन:-पुन: जोर दिया। अत: आज जब यह पुस्तक ''कौन थे वे'' पूर्ण होकर युग के मन-प्राणों में भी बाबू जी महाराज के साँचे स्वरूप को अंकित कर पाने का गौरव प्राप्त करने जा रही है तो फिर यह बहिन उन भाई का नाम भी अंकित करना कैसे भूल सकती है। वे भाई श्री एच० आर० पगार साहब, इस समय भोपाल में उप-महाप्रबन्धक, स्टेट बैंक आफ इंडिया के पद पर कार्यरत हैं।

# समर्पण

कितना भी कहो आँखें नम आज भी हो जाती हैं ।
जब याद 'उनकी' आये है, छवि उभर-उभर आती है ।।

जिन विश्वात्मा की मृदु-मुस्कान की पावन थिरकन से वातावरण झूम-झूम उठता था, उन पावन मौजों की खामोश बहारें जहाँ प्राणिमात्र की अन्तरात्मा को अभिभूत कर जाती थी, वहीं उनकी शून्य निगाहें, भी हम अभ्यासियों के प्यार से भरी-भरी सी हो उठती थीं । स्मृतियों की उन दिव्य-फुलझड़ियों का सहेजा हुआ संचय, जो मुझे मिला है, उन सबको समेटे हुये मेरा हृदय जब पुनः-पुनः पुकार कर मुझसे ही पूछने लगा कि कौन थे वे स्वयं मुझको ही चौंका देने वाली वह मृदु·मुस्कान भरी मधुर एवं दिव्य-ध्वनि स्वतः ही कुछ बोलने को अधीर हो उठती थी तब आत्म-सुखद उद्गारों को सहेजे हुये उन महा-महात्मन् के पावन चरणों की वन्दना में विभोर हो उठी मेरी यह लेखनी । और आज उस दैविक-भेद को कि 'कौन थे वे' को, समस्त के लिये उजागर कर देने वाले हमारे दादा गुरु श्री लाला जी साहब के ही पावन चरण-द्वय में पुष्पांजलि के रूप में समर्पित है मेरी यह पुस्तक 'कौन थे वे' ।

8, फरवरी 1992

(बसंत पंचमी)

—कस्तूरी

# श्री लालाजी साहब

जिन महा-महात्मन के चरणों में मेरी यह पुस्तक समर्पित है, उनके विषय में कुछ तो हम जानना ही चाहेंगे, इसलिये उनका पावन-परिचय लिखने का अब मेरा लघु प्रयास है। उनका परिचय भला कोई क्या दे सकेगा कि जिन परम पूज्य ने इस पृथ्वी पर कार्यरत दिव्य-विभूति श्री बाबू जी महाराज में ही, अपने परिचय को अपने शुभ नाम के सहित विलय अर्थात् (मर्ज) कर दिया है। भला धरा ने कभी क्या ऐसे चरणों का चुम्बन कर अपने को कृत्कृत्य किया होगा ? नहीं, न कभी (कथन हुआ है और न होगा। हाँ जो कुछ भी मेरे श्री बाबूजी ने मेरे समक्ष उन स्पिरिचुअल-जायंट श्री लाला जी साहब का सूक्ष्म सा परिचय दिया है, यह लेखिनी वही और वैसा ही उनका परिचय प्रस्तुत कर पाने का उनसे ही वरदान माँगती है।

एक दिन स्वतः ही एक दैविक-प्रश्न रह-रह कर समक्ष में साकार मुझसे मानो अपना उत्तर माँग रहा था कि "आदि गुरू" 'समर्थ' और 'सद्गुरु' इन तीन दिव्य-उपाधियों से किसने परम पूज्य श्री लाला जी साहब को विभूषित किया होगा ? जबकि यह दैविक-उपाधियाँ कोई स्वयं अपने लिये नहीं लगा सकता है और उनके गुरू ने उन्हें इनसे बिभूषित नहीं किया बल्कि उस दैविक

कार्य जो उन्हें सौंपा गया था और कदाचित् जिसे पूर्ण करके प्रत्यक्ष कर देने पर ही उक्त दैविक-उपाधियों से स्वयं 'डिवाइन' ने ही उन्हें विभूषित किया होगा।

श्री लाला जी के पूज्य गुरुवर ने उन्हें यह गुरुवर-दैविक-कार्य सौंपा 'कि युग-परिवर्तन के लिये आदि-शक्ति को पृथ्वी पर उतारना है' तो सर्व प्रथम श्री लाला जी साहब ने उस आदि-गुरु अर्थात् टेकनीक को अपनी अथक साधना द्वारा पहचाना कि कैसे उस महत् - शक्ति को पृथ्वी पर उतारा जा सकता है। वैसे हम सभी जानते हैं कि अवतारों को पृथ्वी पर लाने के लिये ऋषिय - मुनियों एवं देवताओं ने प्रार्थना की तब ईश्वरीय - शक्ति में क्षोभ हुआ और समय की आवश्यकतानुसार ईश्वरीय शक्ति का रुख धरणितल की ओर हो गया और राम एवं कृष्णावतार का आविर्भाव पृथ्वी पर हुआ। किन्तु युग परिवर्तन के लिये तो भूमा - अर्थात् आदि - शक्ति की शक्ति को ही धरा पर उतार लाने के लिये सर्वप्रथम साधना द्वारा स्वयं को ऐसा तैयार करने की आवश्यकता थी जिससे आदि - शक्ति के धरती पर उतरने की प्रार्थना मंजूर हो सके। यह दैविक - गुरुवर कार्य पूर्ण कर पाने में हमारे लाला जी साहब समर्थ हुये। कदाचित तभी यह दैविक - उपाधि अर्थात् समर्थ सहज ही उनके नाम से शोभा पा सकी होगी। अब और आगे बढ़े क्योंकि लेखिनी मचल रही है कि उसे रोका न जाये और देने वाला जब देने को बेचैन हो तो भला धीरज धरा भी कैसे जा सकता है।

समय आने पर समर्थ को यह आभास भी मिल गया कि वह महत् - शक्ति पृथ्वी पर आलोकित हो चुकी है तब उनका दर्शन पाना भी तो समर्थ के लिये आवश्यक हो गया। इस विषय में मेरे गीत की एक लाइन प्रत्यक्ष में उभर कर स्वयं ही गुनगुना उठी कि—

प्रकृति ने आंचल सजाया, पुरुष भी विस्मित हुआ।
नेह से लेने को चुम्बन, भूमा भू पर छा गया॥

दिव्य - प्राणाहुति - शक्ति का प्रवाह तबसे ही मानव - मात्र के लिये सुलभ हो सका और तब ही ध्यान में उस दिव्य - बालक का दर्शन भी उन्होंने पा लिया था। जैसा श्री बाबू जी महाराज के कथन से स्पष्ट भी हो जाता है कि जब वे छः दिन के थे और सूप में लेटे थे तब उन्हें लाला जी साहब से तवज्जह अर्थात् ट्राँसमिशन मिल रहा था। इधर जब 'समर्थ' ने देखा कि उनके द्वारा दी गई महत् - शक्ति की तवज्जह को उस बालक ने आत्मसात कर लिया है बस तबसे ही उन्होंने 'सद्गुरु' का भार सम्भाल लिया। तभी मेरे गीत की एक पंक्ति स्वतंत्र रूप से स्वतः ही गा उठी कि 'सद्गुरू' की पुलक पलकें, देखते ही रह गये।" इसका प्रमाण श्री बाबू जी के इस कथन से और भी प्रत्यक्ष हो जाता है कि जब 'वे' सद्गुरु के चरणों में पहुँचे थे तो उनकी लय अवस्था पूर्ण हो चुकी थी। समर्थ सद्गुरु का यह कथन है कि "मेरा और तुम्हारा अवतरण जात अर्थात् भूमा से हुआ है।"

इस दैविक - रहस्योद्‌घाटन को सुचारू रूप से लिख पाने के लिये मेरी लेखिनी को अपनी अहेतुकी कृपा का सदा अवलम्बन देते रहें यही प्रार्थना है और प्राणिमात्र के हृदय, श्री बाबूजी महाराज की ईश्वरीय-धारा की अनवरत वर्षा से भींग उठें, इस आशा को लेकर उनकी नूरचश्मी की ये आँखें सदैव उनके पावन चरण - द्वय को पखारती रहेंगी।

卐

# कौन थे वे

अचानक डिविनिटी के सागर में स्पन्दन हुआ और मानों डिवाइन ने अपनी गोद से डिवाइन - शिशु को संवार कर समर्थ सद्गुरु श्री लाला जी साहब की ममतामय गोद में सौंप दिया। धरती पर इस दिव्य - शिशु का कोई रूप उभरता, उसका कोई नाम होता, इससे पहले ही सहज प्रसन्नता की चरम सीमा में डूब कर मानों श्री लाला जी साहब ने अपना ही शुभ नाम शिशु को प्रदान कर दिया था। उस दिव्य - शिशु का दिव्य रूप समस्त वातावरण में विराट् रूप में फैल गया। जैसा कि हमेशा ही हुआ है कि किसी भी अवतार के पृथ्वी पर अवतरित होने से पहले उसका दिव्य विराट् स्वरूप प्रथम ब्रह्मांड में ही संवारता है। उदाहरण स्वरूप श्री राम जन्म से पहले माता कौशिल्या ने उनके दिव्य विराट् रूप का दर्शन किया था। पश्चात् स्तुति करके कि "तजहु तात यह रूपा" और "कीजिये शिशु लीला" कह करके प्रणाम करते ही वह दिव्य रूप भगवान राम के नाम से पृथ्वी पर भौतिक रूप में संसार में प्रगट हो गया। इसी प्रकार देवकी व वसुदेव ने भगवान श्रीकृष्ण के उस दिव्य - स्वरूप का दर्शन कारागार में पाया था। पश्चात् स्तुति और विनती करने पर वह दिव्य स्वरूप कृष्ण के नाम से धरती पर अवतरित होकर यशोदा की गोद में खेलने चला गया।

अवतार सदैव देवता, ऋषियों और मुनियों की प्रार्थना से ही पृथ्वी पर अवतरित होते हैं किन्तु हमारे समर्थ सद्गुरु श्री लाला जी महाराज ने अपने गुरु द्वारा सौंपे हुए कार्य को सम्पन्न करने के लिये परम आदि-शक्ति का धरती पर प्रादुर्भाव लाने के लिये सात महीने की अथक साधना द्वारा पहले स्वयं में वह पूर्णता प्राप्त की। तदुपरान्त प्रकृति के उस महत्-कार्य को सम्पन्न करने के लिए डिवाइन-पावर अर्थात अल्टीमेट को ध ा पर उतार लाने की उनकी अर्थात् श्री लाला जी साहब की प्रार्थना स्वीकृत हुई। फलस्वरूप जैसा मैंने आरम्भ में लिखा है कि डिविनिटी के सागर में स्पन्दन हुआ और सन् १८९९ ई० में वैशाख-वदी पंचमी को शाहजहाँपुर उत्तर प्रदेश में बाबू बद्री प्रसाद जी के गृह में पुत्र रत्न का आविर्भाव हुआ। कैसा दिव्य चमत्कार हुआ कि दिव्य-स्वरूप शिशु को समर्थ सद्गुरु का परम प्रिय नाम 'रामचन्द्र' ही पंडित ने भी दिया। वह दिव्य-शिशु रामचन्द्र के नाम से कैसे पलें-बढ़ें और अपनी सांची जननी समर्थ सद्गुरु के चरणों में कब और कैसे पहुँचे, इस बारे में श्री बाबू जी महाराज ने अपनी आत्मकथा नामक पुस्तक में भी लिखा है। मैंने जो कुछ भी उनके दिव्य अवतरण के विषय में ऊपर लिखा है वह उनके द्वारा ही प्रदान की हुई अवस्था में ही सम्भव हो सकी है।

समर्थ सद्गुरु श्री रामचन्द्र जी महाराज शाहजहाँपुर उ० प्र० द्वारा प्रतिपादित आध्यात्म - पथ सहज - मार्ग डिवाइन-

लाइट से जगमगाता हुआ आज अभ्यासियों की साधना को सफल बना रहा है। उन्होंने अपनी दैविक इच्छा-शक्ति से संवार कर सहज-मार्ग साधना को जनता के समक्ष इस प्रकार रखा है कि हम अभ्यासियों को साधना का बंधन तक प्रतीत नहीं होता है परन्तु में निरंतर निखार पाती हुई आध्यामिक-दशायें लक्ष्य प्राप्ति के प्रति हमें सदैव जागरूक रखती है। जब मैं सहज-मार्ग साधना में प्रवृत्त हुई, मैंने श्री बाबू जी महाराज के चरणों में, उनकी दिव्य प्राणाहुति का प्रवाह पाकर; और उनकी ही निगाह में पलते हुये उनकी ही कृपा से जो भी दैविक-रहस्य समझ में आये आज उनको ही लिख पाने का प्रयास मैंने किया है। उनकी कृपा के बिना भला कौन इस दिव्य-रहस्य को खोलकर धरा को सम्पन्न बना सकता था। यह तो समर्थ सद्‌गुरु श्री लाला जी साहब की ही अलौकिक क्षमता थी कि जिसने आदि-शक्ति के केन्द्र में स्पन्दन उत्पन्न करके इस दिव्य-रत्न को उतार कर पृथ्वी को अलंकृत कर दिया था। श्री बाबू जी महाराज ने अपने समर्थ सद्‌गुरु के विषय में ठीक ही लिखा है कि वे स्प्रिचुअल जायन्ट थे। अपनी आध्यात्मिक-जननी को गौरान्वित करने की क्षमता भी श्री बाबूजी महाराज के अतिरिक्त भला किसमें हो सकती थी कि जिन्होंने प्राणिमात्र को अपनी ममतामयी गोद का आश्रय दिया। हमें भूमा तक ले चलने का साहस वही तो कर सकता है जो उसकी प्रकृति भूमा की शक्ति के सहित आया हो। इतना ही नहीं उन्होंने अपनी अमोघ इच्छा-शक्ति द्वारा ईश्वरीय शक्ति का प्रवाह जन-साधारण के हित सुलभ करके क्रमशः एक सीढ़ी से दूसरी

सीढ़ी पुनः तीसरी पर चढ़ा कर आध्यात्मिक-मार्ग को प्रशस्त करते हये परम साक्षात्कार का द्वार खोल दिया है। कौन जानेगा उनका यह भेद, जो भेद से परे है और असलियत ही 'जिसका भेद भी है वे। अभ्यासियों को सीढ़ी दर सीढ़ी आध्यात्मिक प्रगति देते हुये, अध्यात्मिक-गतियों के रहस्य से भी अवगत कराते हुये ले चलते हैं। भौतिक आवरणों का विच्छेदन करके हमारे समक्ष सूक्ष्म से सूक्ष्म दशाओं को यों बिखेर देते हैं मानों यह कोई रहस्य ही नहीं था। ममतामय विराट् हृदय, शून्य दृष्टि, हमारी उन्नति के लिये सदैव सजग माइंड, अपने में स्वतः ही मुस्कराता हुआ वह पावन मुस्कान भरा स्वरूप मानों प्राणिमात्र के लिये सहज एवं मोहक निमंत्रण था। फिर भला उस दिव्य - आकर्षण को कोई पीठ भी कैसे दे सकता था।

श्री बाबू जी के शुभागमन के रहस्य - उद्घाटन के विषय में जो मैंने ऊपर लिखा है, एक संस्मरण द्वारा प्रमाणित भी है। एक बार शाहजहाँपुर में घर में मैं व मेरी बहिन वर्षा के बाद सारे कपड़े धूप में डाल रही थी। उसमें एक नन्हा सा झबला और नन्हीं सी टोपी मिली और इसे भी हमने सुखा दिया, इतने में दादी अर्थात् श्री बाबू जी की पूज्या माता जी आईं, तो हमने उनसे पूछा कि दादी या इतने छोटे कपड़े किसके हैं ? उन्होंने झट से ये कपड़े हमारे हाथ से लेकर कहा - इन्हें भीतर रक्खो, ये रामचन्द्र की छठी अथात् जब वे छः दिन के थे

के कपड़े हैं, जिन्हें नव - शिशु को बुआ देती हैं । उन्होंने बताया कि इन्हें बहुत संभाल कर रक्खा जाता है जिससे कभी कोई टोना टुटका न कर दें । इतने मे श्री बाबू जी भीतर आये तो बच्चों की तरह हमारे मुंह से निकल गया कि बाबू जी आप भी कभी इतने छोटे थे ? अचानक गम्भीर होकर वे बोले कि "हाँ मुझे आज भी भलीभाँति याद है कि छठी के दिन नहलाकर जब धूप में मुझे लिटाया गया था तब लाला जी साहब मुझे तवज्जोह दे रहे थे ।" 'हम तो यह सुनकर आवाक् रहे गये किन्तु यह कहावत आँखों के आगे चरितार्थ हो उठी कि 'पूत के पांव पालने में ही दीख जाते हैं ।'

## पारिवारिक परिचय –

जब मैंने मिशन में प्रवेश पाया था तब सौभाग्यवश माता जी अर्थात् मालिक की पत्नी जी भी मौजूद थीं । क्या अलौकिक जोड़ी थी कि हमारे बाबू जी महाराज का शरीर दुबला एवं कद लम्बा था और माता जी की काया मोटी परन्तु गठी हुई तन्दुरस्त थी । यह कमज़ोर और वे इतनी शक्तिशालिनी थीं कि गाँव की खेती से आये किवन्टिलों धान को रोज प्रातः ४ बजे से दोनों हाथों से एक साथ दो मूसलों द्वारा कूटती थीं, फिर उन्हें सूप से फटक कर साफ करती थीं । उपरान्त पीतल के बड़े बड़े वह भारी कलसे मांज, धोकर, उन्हें पानी से भरकर कायदे से रख देती थीं । नहाने के बाद बासी चार पराठे का कलेवा

करती थीं। थोड़ी दे बैठ कर बातें करती, फिर बच्चों को नहला-धुला कर कपड़े आदि साफ करती थीं और खाना बनना शुरु कर देतीं थीं। एक बार पूज्या माता जी मेरी अम्मा को सुनाने लगीं—"जानती हो भाभी, यह इतने कमजोर हैं कि इन पे बच्चा तक नहीं उठाये उठते हैं।" इतना तो हमने भी देखा था कि रात में मालिक का परिवार ऊपर छत पर सोता था। माता जी ही सोते बच्चे को गोदी में उठाकर ऊपर ले जाती थीं और बाबू जी पानी का लोटा-गिलास लेकर जाते थे। उस समय बाबू जी की खुराक भी ठीक थी। कचहरी जाते समय फूल का कटोरा भर कर साबूदाना लेते और छोटी तश्तरी में चार टुकड़े मिठाई के जरूर रहते थे। पुनः शाम को कचहरी से लौट कर कपड़े बदल कर, हाथ-मुंह धोकर नाश्ता करते। एक गिलास दूध और छोटी तश्तरी भर कर नमकीन मठरियाँ और साथ में कोई अचार रहता था। एक बहिन बाबू जी से बड़ी थीं और एक छोटी थीं। बड़ी का नाम तेजरानी और छोटी का नाम कुटुमप्यारी था। दोनों ही हिन्दी साहित्य में लेखिका के रूप में जानी जाती रही हैं। उनके पूज्य पिता जी रायबहादुर बाबू बद्री प्रसाद जी शहर के माने हुये रईसों व जमींदारों में से एक थे। उनकी पूज्या माताजी पूजा करने मंदिर जाया करती थीं तो पुराने चलन के अनुसार धोती के ऊपर चादर भी ओढ़कर जाती थीं। उनकी पूज्या माता जी को हम सबने देखा था परन्तु पिता को नहीं श्री बाबूजी का चार पुत्र और दो पुत्रियों से भरपूर परिवार था। परिवार का यह

परिचय तो मात्र मेरी विहंगम दृष्टि द्वारा ही लिखा गया है। उन परम पूज्य के दर्शन मात्र से जब हमें अपना ही परिचय भूल जाता है तो हम और देखते भी क्या। उनका परिचय भी भला क्या था मूल-भुलैया मात्र ही था। कभी हमें पूरी तरह से घरेलू स्वजन की तरह प्रिय लगते थे और कभी दिव्य परसनेलिटी के रूप में समक्ष में आ खड़े होते और तब हम पर विस्मृत-अवस्था छा जाती थी। तभी तो मेरी उम्र जब खुद को भी भूल गई और सृष्टि के आदि की तह का 'उनकी' कृपा से ही स्पर्श पा सकी तभी इस पुस्तक लेखन के लिये लेखनी उठ सकी और मुंह खोलने का साहस जुटा सकी मानों उनसे ही साहस उधार ले कर।

## व्यावहारिक—जीवन

हमारे श्री बाबू जी महाराज के व्यावहारिक जीवन और आध्यात्मिक—जीवन में कोई भिन्नता नहीं थी। उनके व्यावहारिक जीवन व दिन-चर्या में भी सदैव महत् पुरुष की दृढ़ता एवं मानवता की झलक मैंने पाई थी। दुरदर्शिता तो ऐसी कि कोई सांसारिक-पुरुष भी उस तक नहीं पहुँच सकता है। जब आश्रम के नक्शे बन कर आने लगे तो देखते सब थे परन्तु उनका कथन आज भी मुझे याद है कि "इतने नक्शे ये लोग क्यों तैयार कर रहे हैं। पैसा पास में नहीं है फिर भी बिना सोचे समझे लोग नक्शे बना रहे हैं।" उनका कथन था कि "जमीन बेशक अधिक ले लो और उसे एक ऊँची दीवार से घेर लो और अधिक से अधिक एक कमरा बना दो। फिर इसमें वर्ष भर खेती करके

जो पैदा होगा उसमें कम से कम बढ़ती हुई अभ्यासियों की संख्या के खाने के खर्च में हमें कुछ सहायता मिल जायेगी। विल्डिंग तो जितनी भी बड़ी बनाई जायेगी फिर भी जगह कम ही पड़ेगी और टेन्ट तो लगवाना ही पड़ेगा। दूसरे जब तक अभ्यासियों के माइण्ड आध्यात्मिक क्षेत्र में विकसित नहीं हो जाते हैं तब तक हर आदमीं बिल्डिंग में ही रहना पसंद करेगा। जब बिल्डिंग ही न होगी तो कम से कम एक लालच से वह बचा रहेगा और आपस के मन में मैलापन भी नहीं आने पायेगा :" किसी ने प्रश्न किया कि "बाबू जी महाराज, अभ्यासी होकर लोग ऐसा क्यों करेंगे ? तो सहज ही सौम्य स्वर में आप बोले "क्योंकि कोई एकदम सत नहीं हो जाता है। जो तुम देख रहे हो' यह अभ्यासियों की भीड़ है, अभ्यासी तो मात्र ऊँगलियों पर गिनने भर को है।"

ऐसे ही किसी ने आश्रम में अस्पताल बनने का सुझाव दिया तो बोले, "हमारी गृहस्थ - संस्था है। अस्पताल में आने वाले लोग सब भले ही तो नहीं हो सकते हैं और फिर जब - जब, जहाँ - जहाँ भी तो ऐसे बाह्य चीजों को पसारे किये गये हैं तो ये तो बढ़ते ही चले गये हैं और आध्यात्मिकता लुप्त होती चली गई। मेरी संस्था तो आध्यात्मिक संस्था है। यहाँ नेचर से मिले - जुले विचार ही होने चाहिये।" कितनी दूरदर्शिता थी उनकी अपने मिशन के उत्थान के प्रति और अपने अभ्यासियों की आत्मिक-उन्नति के लिये कितने सचेत थे वे।

अभ्यासियों का ध्यान साक्षात्कार के अतिरिक्त कहीं भटकने न पाये, इस बात के लिये वे कितने सजग थे। प्रथम बार जब बसन्तोत्सव के लिये डोनेशन का प्रश्न उठा तो वे बहुत पीड़ित हुये। बोले—"तुम लोग यह चाहते हो कि माँ अपने बच्चों से खाने के लिए पैसा माँगे ?" बहुत दलीलों के बाद भी उनके मन से इस काम के लिये हाँ नहीं निकल सका। उनके सामने ३० अप्रैल का उत्सव अर्थात् श्री बाबू जी की जन्म-तिथि मनाने का तो प्रश्न ही नहीं उठ सकता था क्योंकि वे इतने वृद्ध थे और कहते थे कि "मात्र हमारे मिशन के भंडारे के जो हमारे समर्थ सद्‌गुरु श्री लाला जी साहब के पावन जन्म दिन पर होता है, मिशन में कोई अन्य उत्सव नहीं मनाया जायेगा। नहीं तो लोग उत्सव पर एकत्रित होने के इंतजार में रहेंगे और "साक्षात्कार जो अपना ध्येय है, उसे पीछे छोड़ देंगे।"

उन्हें अभ्यासियों की हर सुख-सुविधा का इतना ध्यान रहता था कि उन्हें अपनी सुविधा का तो ध्यान ही नहीं रहता था। जब विदेश से अभ्यासी भाई-बहिनों का आना शुरु हुआ तो मैंने देखा कि महीने-महीने भर पहले स्वयं दूध पीना बंद कर देते थे। एक बार हम लोग वहीं थे तो पूछा कि "बाबूजी, आप आजकल दूध नहीं ले रहे हैं" तो बोले "अब इतनी दूर से विदेशी लोग आ रहे हैं और उन्हें मक्खन-डबलरोटी खाने की आदत है। वे हमारी तरह दाल-रोटी नहीं खाते हैं, फिर दूध में मेरी ज्यादा रूचि भी नहीं है और दूध छोड़ देने से मैं कमजोर भी नहीं होता हूँ।" सुनकर हम सब लोगों को मन मन में बड़ा दुःख हुआ।

इतना ही नहीं, अपने बच्चों की पढ़ाई, फीस, कपड़े आदि के विषय में इतने सतर्क रहते थे कि फीस जमा करने की तारीख और हर दूसरे - तीसरे महीने बच्चों के कपड़े आदि की खोज-खबर लेना वे भूलते नहीं थे। बच्चों के बीमार होने पर उनका ठीक से इलाज करवाना, कचहरी के वापस लौटते समय खुद ही उनकी दवा आदि लाना, उन्हें हमेशा याद रहता था। इतना ही नहीं उन्हें यह तक याद रहता था कि घर के लिये जो आटा पिसाया था वह कब खत्म हो रहा है। लड़कियों से यह यह भी पूछते रहते थे कि घर के लिये क्या - क्या सामान चाहिये। सच तो यह है कि फैलते हुये मिशन और बढ़ते हुये अभ्यासियों की सेवा में उनकी लड़कियों और बड़ी बहू का बड़ा हाथ रहा है। पास में जब बहुत पैसा होता है तो सहायक बहुत मिल जाते हैं। लेकिन जब घर में धन की कमी हो उस समय साथ देना ही सबसे प्रशंसनीय सहायता है। उनकी लड़कियों व बहू ने कभी उनसे कोई मांग नहीं की कि उन्हें कोई अच्छा कपड़ा या शौक की चीज चाहिये। वे जो कुछ भी अपने मन से ले आते थे सब खुशी से स्वीकार कर लेते थे। न तो घी, न फल, न दूध ऐसी कोई चीज उन्हें मिलती थी। फिर भी वे सब संतुष्ट और प्रसन्न थे। अभ्यासियों के आने पर उन्हें कोई परेशानी अनुभव नहीं होती थी बल्कि अभ्यासियों के आने पर वे सब खुश हो जाते थे।

उनके किसी भी कार्य में कट्टरता का पुट नहीं होता था वरन् सहजता ही दरसती थी। ऐसे अनेक उदाहरण हमें देखने

को मिला करते थे जिनमें एक यह भी है । एक बार उनकी बूढ़ी और कट्टरपंथी माँ के बुलाने पर कि टेसू-झाँझी अर्थात् गुड्डा-गुड़िया का विवाह है' वे दरवाजे पर गये। माँ ने गुड्डे के टीका लगाने को कहा तो आपने टीका लगा दिया और वापस आकर हुक्का पीने लगे। एक अभ्यासी भाई ने पूछा कि "बाबू जी, आप भी ऐसी मुश्किल में फंस जाते हैं, हम भी दोस्तों या परिवार के साथ जब मन्दिर में पूजा करने के लिए ऐसे ही बाध्य हो जाते हैं तो फिर क्या करें इस मूर्ति में आपको ही मान कर पूजा कर लेते हैं। तब तुरन्त ही आप बोल पड़े— "कृपा करके मुझे मूर्ति में स्थापित मत करो, क्योंकि मेरे लाला जी साहब मुझे आजाद ही लाये हैं तो मुझे आजाद ही रहने दो। दूसरे जब माँ की खुशी के लिए मजबूरी में मुझे ऐसा करना पड़ता है तो मेरी आँखों को यह खबर नहीं होती कि मेरे हाथों ने क्या किया है क्योंकि मेरी नजर तो हमारे लाला जी साहब की नजर हो चुकी है।" इस प्रकार हमें न जाने कितनी शिक्षा उनकी दैनिक-चर्या से मिलती रहती थी।

श्री बाबू जी महराज के बारे में उनके गुरुभाइयों से व उनके घर में भी बातें सुनतीं थीं तो बहुत अच्छा लगता था कि जब 'उनकी' अवस्था आठ-नौ वर्ष की ही रही होगी तो जिस रोगी के समीप वे खड़े हो जाते थे, उसकी पीड़ा स्वतः ही कम हो जाती थी। अपने विद्यार्थी जीवन में एक बार उनके हेडमास्टर के शरीर के किसी भाग में इतना तेज दर्द होने लगा

कि वे कराहने लगे तो बाबू जी का एक बाल्य मित्र बोला— "कहिये तो रामचन्दर को बुला लाऊँ तो आपकी पीड़ा कम हो जायेगी।" वे अचकचा कर बोले-अच्छा ले आओ। बालक आकर "रामचन्दर" को बुला ले गया और सच ही हेडमास्टर की पीड़ा कम हो गई और उनका आदर भाव बालक रामचन्दर के प्रति सजग हो उठा। अब मेरे मन में बार-बार यह बात आती है कि यह दशा अन्तर की लय-अवस्था का एक दैविक परिणाम ही है जिसका लाभ हमें लय-अवस्था प्राप्त होने पर ही होता है। श्री बाबू जी महाराज ने लय-अवस्था की ऐसी अवस्था पर पहुँचने पर मुझे लिखा था कि "मुझे खुशी है कि मेरी हालत की पुनरावृत्ति तुम्हारे में हो रही है।" मैं आश्चर्य में डूब जाती हूं कि "उनका बाल्य काल भी लय-अवस्था की श्रेष्ठ अवस्था का प्रतीक था। शब्द भला कैसे व्यक्त कर सकते हैं उनके महत् व्यक्तित्व के विषय में।

## मृदु-मुस्कान

मेरे श्री बाबू जी महाराज की मृदु-मुस्कान भी दिव्य-मुस्कान थी। अपनी इसी दिव्य मुस्कान की आड़ लेकर उन्होंने अभ्यासी हृदयों की कितनी ही गन्दगी को अपनी इच्छा-शक्ति द्वारा ईश्वरीय-धारा का प्रवाह देकर धोया था। दिव्य-संकल्प को साकार कर देने में दृढ़-संकल्प श्री बाबू जी महराज का वह दिव्य स्वरूप सत्य ही ऐसा तत्पर था कि जो भी विचार "अध्यात्मिक विषय का उनके मन में उठता, यह उनकी दिव्य शक्ति का सम्बल पाकर साकार हो जाता था। दिव्य-शक्ति की

हृदय में उतार कर संभवतः मानव-मात्र को सत्य-पद पर प्रतिष्ठित कर देने के लिए ही उस दिव्य विभूति का शुभागमन धरा पर हुआ था। आध्यात्मिक श्रेष्ठ गतियों के हीरे-मोती मानव-मात्र के निमित्त बिखेर देने के लिये ही मानो 'मालिक' ने उस दिन इस लेखिनी को आवाज दी थी कि वह कुछ लिखे। उस दिव्य दृश्य के नक्श को शब्दों के माध्यम से तो ऐसे ही उतारा जा सकता है कि हम उस परम प्रिय में लय होकर वह दृश्य देख सकें कि—

दर्द मानव का छुपाये लाल 'लाला' का खड़ा यों।
मानों चिर विजई योद्धा, सृष्टि का गहना सजा ज्यों।।

सच ही सृष्टि का गहना ही तो रहे हैं 'वे'। भूमा के तेज को लिये हुये पृथ्वी पर छाये हुए उस दिलेर की दिव्य छवि का वर्णन क्या अभी कोई लेखिनी कर पायेगी ? कदापि नहीं। उनकी दिव्य प्राणाहुति का प्रवाह अभ्यासी हृदयों की आध्यात्मिक उन्नति की राह में आये बाधक शूलों (संस्कारों) को छिन्न-भिन्न कर देता है और हृदयों में सतत्-मुस्कान के रूप में दिव्यानन्द के अनुभवों को स्थापित कर जाता है। अपने सानी वे आप ही थे। इसका सुदृढ़ प्रमाण तो हमारे समक्ष प्रत्यक्ष ही था कि 'उनको' पृथ्वी पर उतार कर लाने वाले समर्थ सद्गुरु भी उस दिव्य-विभूति का दर्शन पाकर अपने को अलग न रख सके और उसमें ही अपने को मर्ज (**Merge**) कर दिया। उसके ही फलस्वरूप आज हम सभी यह महसूस कर पाने में

समर्थ हैं कि श्री बाबू जी के साथ स्वत: ही श्री लालाजी महाराज का भी समीप्य हमें सदा ही मिलता रहता है। जब-जब श्री बाबूजी की मृदु-मुस्कान का दर्शन हम कर पाते थे तो उनकी वाणी से हमें यही सुनाई देता रहा है कि अमुक-कार्य हमारे लाला जी साहब ने ही ऐसी तत्परता से किया है। इस रोती - विलखती धरती के आँचल को उनकी मुस्कान के मोतियों से सौभाग्यशाली बना देने वाले समर्थ सदगुरू ही तो थे। उस दिव्य-विभूति श्री बाबू जी महाराज के पावन मुखार-विन्दु की मुस्कान विश्व की मुस्कान थी। जब-जब वह दिव्य मुस्कान उस दिव्य-मुख पर उभरती थी तो यही प्रतीत होता था कि विद्युत के समान यह समस्त विश्व में फैल गई है। ऐसी ही थिरकती हुई यह मृदु मुस्कान मानों आज हमसे प्रश्न कर रही है कि क्या तुम बता सकते हो कि 'कौन थे वे ? यदि नहीं, तो मुझे पढ़ लो।

बहुधा उनकी मुस्कुराहट खुशी की खिलाखिलाहट में भी बदल जाती थी। मैंने देखा कि जब कभी श्री बाबू जी महाराज अन्तर में ही खिलखिला उठते थे तब मानों दिव्य प्रकाश की छवि हमारे कुल सिस्टम में छिटक उठती थी। जब कभी मालिक मुस्कुराते तो हमारी अन्तरात्मा स्वतः ही झूम उठती थी, नाच उठती थी। जब कुर्सी पर बैठे श्री बाबू जी महाराज बालक की तरह किसी बात पर हाथ उठाये खिलखिला कर हँस पड़ते थे। तब मैंने यही पाया कि मानों विश्व खिलखिला उठा है। जब कुर्सी

पर बैठे "वे मुस्कुरा उठते तब मैंने पाया कि मानों अध्यात्मिक धारा ने विश्व के वातावरण को पखार दिया हो। "मालिक"-की शून्य आंखों को निहार कर तो हम सुध और खुद को भी खो बैठते थे और क्षण भर के लिए ही सहा मैंने तब ऐसा एहसास पाया कि हम हैं ही नहीं। मानो निगेशन की दुनिया में पहुँच कर बिखर जाते थे। आज मैं यह समझ सकी हूँ कि यही कारण था कि हमारे लिए जीवित रहते हुए भी निगेशन की दिव्य दशा को प्राप्त करना सम्भव हो सका था। जब कभी वे उदास से नजर आते थे तब मानों सारी दुनिया उदास हो उठती थी। कहीं भी किसी भी जगह मन नहीं लगता था।

मुझे आज भी स्मरण है कि जब भी हमारे श्री बाबू जी महाराज के कोई भी गुरुभाई आते थे तो उनसे हम कहते थे—कृपया आज हमें भी बाबू जी के बारे में बतलाएं। इनमें से पं० रामेश्वर प्रसाद जी मिश्र मुख्य थे। श्री बाबू जी शाहजहाँपुर में ही रहते थे। वे अक्सर अपनी दूकान बन्द करने के बाद श्री बाबू जी के घर आया करते थे। श्री बाबू जी महाराज को अपने गुरूभाइयों के प्रति अपार आदर और प्रेम था। पं० रामेश्वर प्रसाद जी को वे सदैव अपना दाहिना हाथ कहते थे। वास्तव में, प्रेम की मूर्ति वे थे भी ऐसे ही। मेरी अम्मा कहती थीं कि "वे तो राम-लक्ष्मण की जोड़ी है।" अजब प्रेम की मूर्ति स्वरूप थे ये बाबा जी। अंतस मानों प्रेम में झूमता रहता था जिसका अवस बाह्य में भी उनके शरीर की हर गति से प्रकट होता था। चेहरा

मानों ईश्वरीय-शक्ति से देदीप्यमान रहता था। चलते हुए पैर मानों प्रेम में मतवाले की तरह इधर-उधर पड़ते से रहते थे। वाणी में ओज और करनी में सच्चाई ही उनका सांचा स्वरूप था। पापा (श्री रामेश्वर प्रसाद ने ही हमें बताया कि उनके भाई साहब 'श्री बाबू जी' सदैव उन्हें कोई न कोई आध्यात्मिक-गति बख्शते रहते थे। एक बार उन्होंने कहा कि "रामेश्वर तुम्हें पार्षद" की हालत में पहुंचा दूं ? पंडित जी कहते "जैसा आप चाहें भाई साहब"।" बाबू जी के गुरुभाई उनके गुरुदेव की थाती थे जिन्हें प्यार से संभाल कर वे सदैव आगे ही ले चलने की सोचा करते थे। आलौकिक स्नेह की मूर्ति थे बाबू जी महाराज। पापा ने बताया कि एक बार एक ब्राह्मण श्री बाबूजी के पास आये और सहज-मार्ग साधना के बारे में सुन कर बोले कि 'तुम कायस्थ होकर यह प्रचार कर रहे हो ?" श्री बाबू जी तो चुप रहे किन्तु पापा ने कहा कि "भाई साहब इन्हें हम अपने साथ लिए जाते हैं क्योंकि हम ब्राह्मण हैं।" वे श्री बाबूजी का अपमान पी नहीं सकते थे। घर ले जाकर ब्राह्मण की खातिर की और बोले कि अब सहज मार्ग-साधना का चमत्कार देखो। ब्राह्मण आँखें बन्द करके बैठ गये तो उन्हें लगा कि धीरे-धीरे उनकी श्वाँस रुकने लगी है। करीब चार-पाँच मिनट होते-होते वे बोले—"अब बन्द कीजिए, नहीं तो हम मर जायेंगे।" पापा ने कहा कि "देख लिया रामचन्दर के सहज मार्ग में रामचन्दर की शक्ति का करिश्मा। ब्राह्मण वही है जो "ब्रह्म" को जाने। तुम ब्राह्मण हो ही

नहीं, अगर बनना चाहो तो फिर रामचन्दर के पास आना।" शाम को जब पापा घर पर आये तो बाबू जी को ये सब बताया क्योंकि वे जानते थे कि श्री बाबू जी को यह फिक्र लगी होगी कि रामेश्वर जाने क्या करेगा। श्री बाबू जी ने अपने सहज शान्त स्वभाव से कहा— कि 'रामेश्वर हमें सहज-मार्ग की इस शक्ति का परिचय नहीं देना है। और अब कभी ऐसा न करना। सहज-मार्ग ईश्वर प्राप्ति का मार्ग है, चमत्कार का नहीं।" बस पापा शान्त हो गये।

गुरुभक्ति तो श्री बाबू जी महाराज की अद्वितीय थी। हमें आध्यात्मिक उन्नति के क्षेत्र में कदम-ब-कदम बढ़ाये हुये और अपने पावन ट्रांसमिशन द्वारा हमारे अन्तर की सफाई करते हुए पावन निखार लाकर भी उनके मुख से सदा यही शब्द मुखरित होते थे कि हमारे लाला जी साहब की यह देन है। वे कब, किसको, क्या दे डालें क्या कौन कह सकता है। मुझे अक्सर लगा कि इसके रूप में मानों श्री लाला जी महाराज जीवित हैं और जिन्हें हम बाबू जी कहते हैं वे न जाने कौन और कहाँ हैं हमें नहीं मालूम। जब वे चुप मानों शून्य हुए बैठे हों तब तो मुझे यही लगता था कि ये मेरे बाबू जी बैठे तो हैं किन्तु कहाँ हैं यह पता नहीं है। आज भी मुझे भली भाँति याद है कि उस समय उन्हें श्री बाबू जी पुकारने पर जब वे देखते थे तो यही लगता था कि हमारी आवाज उन्होंने सुनी नहीं है, मानों कानों ने आवाज सुनकर इनके मुख को इधर कर दिया है। अजीब दृश्य था मानों अस्तित्व विहीन का ही नाम बाबू जी था।

अपने कार्य के लिए वे बहुत चतुर किन्तु परम दाता थे। वे लोगों को सहज मार्ग के बारे में बहुत ही सरलता से बतलाते थे परन्तु स्वयं कभी न तो यह कहा और न अभ्यासी को यह प्रतीत ही होने दिया कि सहज-मार्ग बहुत सरल है या इसमें अभ्यासी को कुछ नहीं करना है। जैसे प्रात: एक घंटे ध्यान करो, शाम को २० मिनट दिल की सफाई कर लिया करो और सोते समय प्रार्थना किया करो। लेकिन जो अंतिम वाक्य कहते थे वह उनके मुख से सुनने में इतना सरल लगता था मानों कुछ करने को ही नहीं है वह यह कि, बस दिन भर ध्यान में रहने का अभ्यास रहे तो बहुत अच्छा हो जाता है। यही वाक्य जान थी पूरी साधना की। किसी भी शब्द पर जोर नहीं होता था और हर वाक्य ऐसी सहजता से बोलते मानों केवल बोले हों, बताने का दबाव बिलकुल नहीं होता था।

न जाने कैसा प्रेम का प्रतीक था उनका स्वरूप जो जी में नहीं समा पाता था, हमेशा हम लोग जब लखीमपुर से शाहजहाँपुर जाते थे तो आदरणीय मास्टर ईश्वर सहाय जी का, बाबू मुरलीधर जी का परिवार भी साथ में होता था। गाड़ी रात को साढ़े ग्यारह बजे शाहजहाँपुर पहुँचती थी, तो वे परम पूज्य खाना हम सबके साथ ही खाने के लिए बैठे रहते थे। उनको क्या पसन्द था, यह मैं नहीं जानती परन्तु हमेशा कहते कि "अम्मा तुम्हारी आलू की कचौड़ियाँ हमें बहुत पसन्द हैं और ऐसी मीठी सोंठ तो हमने बस एक बार मथुरा में एक दुकान पर ही खाई थी तब से अब खाई है।' हम सबके साथ बैठकर जब

वे खाते थे तो कभी ऐसा लगा ही नहीं कि इतनी बड़ी दिव्य-विभूति हमारे साथ बैठ कर इस तरह खाना खा रही है जैसे वह हममें से ही एक हों।

एक बार शाहजहाँपुर जाते में गाड़ी लेट हो जाने के कारण हमने गाड़ी में ही खाना खा लिया और इस तरह खाया कि सारा खाना बीच में ही रखकर उसमें से ही निकाल कर खाते रहे। जब शाहजहाँपुर पहुँचे तो बाबू जी बोले कि "हम भूखे हैं"। हम तो आवाक् रह गये कि अब क्या करें। अम्मा ने कहा कि "भाई कचौड़ियाँ तुम्हें नहीं देंगे, आज जूठी हो गई हैं।" तो बहुत सरल भाव से बोले कि "अम्मा, कचौड़ी तुमने मुँह से खा कर तो रक्खी नहीं हैं, हाथ से ही तो उठाई थी।" बस फिर क्या था एक बार भी जूठेपन का ख्याल नहीं आया और हम "उन्हें" वही खाना खिलाने लगे।

शाहजहाँपुर में बाबू जी के घर में जिस कमरे में हम लोगों को ठहराया जाता था उसे वे हमारा ही कमरा कहा करते थे। उसमें बैठ कर जब वे परम पूज्य हमारे साथ खाना खाते थे तो ऐसा लगता था मानों अन्तर आनन्द मग्न हो गया है। लेकिन ये बहुत बड़े हैं, अलौकिक हैं—ऐसा विशेषण कभी हमारे मन में आया ही नहीं तो भला जिह्वा पर कैसे आता। आज मुझे ऐसा लगता है कि वे उतना ही हमारे समक्ष अपने को खोलते गये जितना कि हम ग्रहण कर सकें और हमें न जाने

वर्षों पूजा से ज्यादा वे प्रिय हो गये थे। जाड़ों में रात को वे हमारे ही कमरे में खाना खाया करते थे। खाने के बाद मेरी अम्मा उन्हें अपनी पान की डिब्बी से एक पान निकाल कर खिलाती थीं। फिर बरोसी (मिट्टी की बनी कोयला जलाने की अंगीठी) को पास में रखवाकर कुरता व स्वेटर थोड़ा ऊपर करके पेट सेंक लिया करते थे। पेट सेंकते हुए हंसी की बातें करते रहते और हम उस बरोसी के पास ही बैठे रहते थे।

"वसन्तोत्सव" में भी सब लोगों के खाना खाने के बाद हमेशा ही हमारे कमरे में खाना खाने आया करते थे। दो-एक बार अम्मा ने हमें भेजा कि "बाबू जी को बुला लाओ, बहुत देर हो गई है खाने के लिए।" जब मैं बाहर आई तो देखा कि जूठे सकोरे व कुल्हड़ बीन कर किनारे फेंक रहे थे। मैंने जाकर अम्मा से कहा तब तक पीछे-पीछे वे भी घर में आ गये। अम्मा ने पूछा कि "काए, अब तुम जमादार का काम करने लगे हो?" तो तुरन्त हंस कर बोले कि "लाला जी साहब ने हमें जमादार ही तो बनाया है अम्मा।" हम भला तब क्या समझ पाते मगर उनके मुख से निकली हर बात मानों जी को प्यारी लगती थी।

हर वर्ष १५ नवम्बर के बाद मास्टर ईश्वर सहाय जी के साथ उनकी दक्षिण भारत जाने की तैयारी होती थी और १५ जनवरी के लगभग दक्षिण यात्रा से वापस लौटते थे आज भी याद आने पर आँखें भर आती हैं कि वे थर्ड क्लास के जनरल डिब्बे में बिना रिजर्वेशन

के ही १४ वर्षों तक दक्षिण भारत की यात्रा पर जाते रहे। यात्रा के पहले घर में खाने के सामान से लेकर बच्चों की फीस तक का पूरा इन्तजाम अपने व मास्टर साहब के परिवार तक का करके ही जाते थे। मद्रास, रामेश्वरम्, धनुषकोटि, सेड़म आदि कई स्थानों पर जाते थे कि 'बिटिया' हम लम्बे और मास्टर साहब भी लम्बे थे। दोनों लोग स्टेशन से किसी सस्ते होटल के छोटे से कमरे की तलाश में खड़खड़े पर ही जाते थे, क्योंकि सबसे सस्ती सवारी वही थी। जब खड़खड़ा जोर से भागता था तो कभी हमारा सिर और कभी मास्टर साहब का सिर उसकी (खड़खड़े की) छत से लड़ता चलता था तो हम दोनों सिर पकड़ कर मुस्कुराते हुए एक—दूसरे को देखकर सिर सहलाते रहते थे। कभी पैसे बचाने के लिए पैदल ही चल लेते थे।

पहली बार जब उन्होंने थ्री टियर का रिजर्वेशन दिल्ली से दक्षिण भारत के लिए करवाया तो मैंने एक अजीब दृश्य देखा। जैसे किसी नई चीज को पाकर बच्चों में कौतूहल व भोलापन होता है बिलकुल वैसा ही कौतूहल एवं भोलापन श्री बाबूजी के मुख पर था। वे कभी गाड़ी में चढ़ते, कभी फिर नीचे आते और कहते—"मास्टर साहब, क्या हम पूरी बर्थ पर अकेले ही लेटे-लेटे चलेंगे?' वह छवि कैसी थी, मैं बता नहीं सकती। कैसी मासूमियत थी चेहरे पर और ऐसा कौतूहल था कि नन्हा बच्चा भी मात था उस पवित्र मासूमियत के आगे।

एक बार मुझको किसी श्रेष्ठ अध्यात्मिक गति में ले जाने के बाद मालिक ने पूज्य मास्टर साहब ईश्वर सहाय जी को लिखा कि अब मेरा काम बिटिया के प्रति पूरा हो गया है उन्होंने मेरा सम्बन्ध सीधे Direct) ईश्वर से जोड़ दिया है और 'उनमें' लय अवस्था प्रदान कर दी है। अतः उनकी (श्री बाबू जी की) आध्यात्मिक जिम्मेदारी मेरे प्रति अब समाप्त हो गई और उस श्रेष्ठ गति को पाये हुए टो पर्सनैलिटी ससार में नहीं रह सकती है। पूज्य मास्टर साहब तुरन्त ही मेरे घर दौड़े आये और मुझे वह पत्र सुनाया। सुनते ही मैं और पिता जी मास्टर साहब के साथ शाहजहाँपुर के लिए चल पड़े। रास्ते भर यही प्रार्थना रही कि जो कुछ भी आध्यात्मिकता "बाबूजी" ने मुझे बक्शी है वह कुल उनके ही चरणों में समर्पित है। मेरे मालिक, जीवन पर्यन्त मेरे रहे, मैं उनके ही हवाले हूँ। मानों एक बार पुनः मिलन में भी वियोग की व्यथा रो पड़ी थी। जब शाहजहाँपुर आया और घर पहुँचे तो मालिक के सामने खड़े होकर कहा—नहीं चाहिये मुझे आध्यात्मिक उन्नति, मुझे मात्र "आप" चाहिए। ले लीजिए सब हालतं।" इस पर स्वामी बिवेकानन्द व परम प्रिय समर्थ सद्‌गुरु श्री लाला जी के डिक्टेट्स आने लगे। बहुत खुश थे वे लोग, किन्तु हमारे लाला जी साहब की चन्द लाइनें जो मुझे याद हैं, वे लाजवाब हैं। समर्थ सदगुरू लाला जी ने कहा कि "इसकी (रामचन्द्र की) शराफत की कहाँ तक दाद दी जाय कि बेलौस की तरह से कुर्सी छोड़ दी, मानों कुछ हुआ ही नहीं। जब श्री बाबू जी ने उन महत् पुरुषों

"के डिक्टेट्स के विषय में मुझे बताया तो मैंने कहा कि "मेरे मालिक का ही यह बड़प्पन है कि अपने ही द्वारा सजाये—संवारे बच्चे के कुर्सी छोड़ने के लिए तैयार हो गये। तब श्री बाबू जी ने कहा कि अब "तुम बिना फिक्र के घर जाओ।" लालाजी साहब ने भी कहा कि "यह तो तुम्हें इसकी शराफत का एक नजारा मात्र दिखाना था। कौन समझेगा इसे ?

एक बात यह कैसी अनोखी थी कि उन महामहात्मन् ने अपनी सद् महफिलों में बैठे रहने का परम सौभाग्य अपने सभी अभ्यासियों को समान रूप से ही दिया हुआ था। चाहे उनसे कोई तोतली भाषा में बोलता तो उसे ही हँसकर उत्तर देते, चाहे कोई बिद्वता भरा प्रश्न पूछता तो भी मुस्कुराकर उसका समाधान करते थे। हम जो अपने मन में प्रश्न भी उठाना नहीं जानते थे तो वे हमारी ओर मात्र मुस्कुराकर देख भर लेते थे तो हमें ऐसा लगता था मानों हम भी कुछ उनके हैं। जब रात के बारह बज चुके थे, महफिल जोरों पर चल रही थी। प्रश्न यह था कि केवल दो दिनों के ही लिए आश्रम में पैसा लगाने को है, फिर क्या होगा परम पूज्य शान्ति मुद्रा में बैठे हुक्का पी रहे थे। जब इस समस्या का कोई हल समझ में नहीं आया तो सब चुप हो गये। तभी अचानक हुक्का रखकर आप बोल उठे, "होगा क्या, आश्रम का कार्य रोक देंगे क्योंकि आश्रम बनवाने का हौसला तो लालाजी साहब ने ही हमें दिया था तो उनको ही इसे पूरा करना है।" बात वहीं की

वहीं रह गई, लेकिन दूसरे दिन दोपहर में करीब बारह बजे डाकिया आया तो बोले—"भाई, हमारे लिए कुछ मनीआर्डर वगैरह लाये हो ?" डाकिया बोला—"हाँ बाबू जी तो आप तुरन्त ही चश्मा लगाकर कलम लेकर उसके पास गये। डाकिया ने दस्तखत करवाये और पचास हजार रुपये का ड्राफ्ट उन्हें दे दिया। डाकिये को प्रसाद देकर ठंडा पानी पिलवाया, फिर कुर्सी पर बैठ गये और कहने लगे कि देखा "आखिर हमारे लालाजी साहब ने बिल्डिंग का काम बन्द नहीं होने दिया। जानती हो क्यों ? क्योंकि शाहजहाँपुर में झट यह बात हँसी का कारण बन जाती कि आखिर बाबूजी के आश्रम का काम रुक ही गया।" इस प्रकार मैंने कई बार देखा कि इस तरह से वे हमें प्रेम की दृढ़ता के विषय में सिखाते ही रहते थे कि :'जब समस्या की पीड़ा से तुम अलग हो जाओगे तब "मालिक" को तुम्हारी पीड़ा का एहसास खुद ही होने लगेगा लेकिन इसकी शर्त है मात्र आंतरिक प्रेम की कड़ी।"

आज भी वे दिन, वे रातें मुझे याद आ जाती हैं जब इधर अर्थात् लखीमपुर में तो मेरी आँखों में नींद नहीं होती थी मानों नींद ने अपने बाबूजी के ध्यान में लयलीन हो जाने की ठान ली थी—क्योंकि नींद भी तो यह जानने लगी थी कि वे हमारे लिये दैनिक-जागरण का संदेशा लेकर पधारे हुए हैं, फिर कैसे आती वह। उधर अर्थात् शाहजहाँपुर में मेरे बाबूजी महाराज को डिवाइन परसैनैलिटी के आराम मे भी अपने

अभ्यासियों के प्यार एवं उनकी आध्यात्मिक उन्नति के हित में मानों कहीं अन्यत्र पनाह माँग ली थी। बहुधा ही ऐसा होता था कि यदि इधर रात के बारह बजकर चालीस मिनट पर मेरी लेखिनी उनकी ही बनी हुई हालतों को तरह-तरह से पत्र में लिख पाने की कोशिश कर रही होती थी तो इधर शाहजहाँपुर में वे परमपूज्य अपनी बेटी के पत्र में लिखी हुई हालतों का उत्तर मेरा पत्र पहुँचने से पहले ही लिखा गए होते थे।

एकबार रात के तीन बजे एकाएक लखीमपुर में मेरी नींद खुल गई और मैं अपनी आँतरिक दशा के बारे में लिखने बैठ गई। मैंने और अनुभव के साथ ही यह अनुभव भी लिखा कि 'अग्नि की तरह कोई चीज उभर कर मेरे अन्दर फैल गई है।" उधर उसी तारीख में उसी दिन रात के तीन बजे ही नारायण दद्दा से श्री बाबू जी ने पत्र लिखवाया था कि "अब रात्रि के तीन बजे हैं, अचानक मैंने देखा कि तुम्हारा अग्नि 'प्वाइन्ट' खुल गया है और कुल में अग्नि जैसी चमक फैल गई।" लेकिन इसके आगे उन्होंने जो लिखा था यह सुनेंगे तो आँखें अश्रु से भर उठेंगी। उनके दिव्य प्यार की यह अनुभूति आज भी स्मरण में आते ही मानों एकबार फिर मुझसे कोई प्रश्न कर बैठता है कि "कौन थे वे ?" किन्तु मेरे पास तो इसका कोई भी उत्तर नहीं है बस उस एहसास से आँखें ही नहीं बल्कि कुल हृदय नम हो उठता है। उन्होंने मुझे लिखा था कि 'बिटिया, मुझे कुछ फिक्र यह है कि

तुम्हारे कहीं दर्द तो नहीं है या किसी भी नस पर जरा सा भी दबाव तो महसूस नहीं कर रही हो ?" और यह पत्र लेकर उन्होंने नारायण दद्दा को लखीमपुर भेजा था। पावन नेत्र की वर्षा में भीगा उनका वह पत्र पढ़ते-पढ़ते मानों मेरा सम्पूर्ण हृदय ही आंख बन गया था जिसके समक्ष साक्षात् वे ही खड़े थे कदाचित् इसीलिमें आँख नहीं बल्कि हृदय ही नम हो गया था। आज मैं एक भेद का खुलासा भी पा गई हूं, कि सद्गुरू अपने दैविक-संदेश को हमारे अन्तर में कुछ इस तरह से जमाये रखते हैं कि हमें भी भौतिक भूख प्यास, जागना—सोना सभी कुछ भूल जाता है।

अब कुछ और भी सुनिये ! हमारी बेवकूफी भरी माँग उन्हें कितनी कठिनाई में डाल देती थी, किन्तु उस बेवकूफी की माँग को भी पूर्ण करने के लिये वे परमप्रिय कैसा उपाय खोज निकालते थे। इसका वर्णन कर पाना लेखनी के परे है। किन्तु आज जब वे लिखाना ही चाह रहे हैं तो लेखनी चुप भी कैसे बैठी रह सकती है। मुझे भली प्रकार यह स्मरण है कि 'यू- प्वाइन्ट की हालत पर उन्होंने ही तो कृपा करके मुझे पहुँचाया था और उसकी यात्रा भी आरम्भ करवा दी थी परन्तु हालत यह थी कि अंतर-मन उस परमानन्द में इस कदर डूबा हुआ था कि उस परमानन्द से एक क्षण को भी निकलना गँवारा न था और श्री बाबू जी महाराज को यात्रा पूर्ण करवाकर, प्वाइन्ट

'बी - पर ले जाने की जल्दी थी। जब मुझे ऐसा लगा कि यह परमानन्द की हालत मुझसे छुटने लगी है तो तुरन्त मैंने श्री बाबू जी महाराज को पत्र लिखा कि 'इस दशा में आप मुझे दो-तीन दिनों से अधिक नहीं रहने देते हैं, कृपया अपने पोती होने की खुशी में ही इस परमानन्द की दशा' से मुझे अभी न निकालिये ।" लौटती डाक से ही उनका उत्तर आया था कि "अव्वल तो मेरे पोती हुई है। इसका पता तो तुमने ही मुझे दिया है, क्योंकि मुझे ऐसा लगा ही नहीं है इसलिए इस बात को मैं भूल ही जाता हूं कि मेरे पोती हुई है। रही तुम्हारी यह माँग कि तुम्हें कुछ दिन इसी हालत में रहने दूं तो इससे मैं बड़ी मुश्किल में पड़ गया हूं, क्योंकि शिक्षक का धर्म यही कहता है कि बच्चे को हमेशा आगे ही ले जाना चाहिये और ऐसा मैंने कर दिया है किन्तु तुम्हारी यह माँग भी मेरा दिल टाल नहीं सकता है कि तुम्हें इस अर्थात् "यू-२" प्वाइन्ट की हालत पर रहने दूं। फिर लिखा कि हमारे "लाला जी साहब की रहमत देखो कि उन्होंने यह तरीका भी मुझे बता दिया है कि तुम्हारी इस बचकानी इच्छा को भी पूर्ण कर दूं। इतना ही नहीं मानों मुझे सिखाने के लिये उन्होंने यह तरीका भी मुझे लिखा दिया था उन्होंने लिखा कि "मन की ऊर्ध्वमुखी गति को मैंने प्वाइन्ट 'यू-२' की हालत से उठाकर 'बी-२' की दशा में रख दिया है और मन की अधोमुखी-वृत्ति को ऊर्ध्वमुखी करके प्वाइन्ट 'यू २' की हालत का स्पर्श भी दे दिया है।" भला कौन कह सकेगा

कि कौन थे वे ? उनके प्यार की उस गरिम में डूब कर तो होश उड़ जाते हैं एवं उनकी कार्य-क्षमता तथा कार्य की तत्परता को देखकर तो हमारा मन स्वयं के अस्तित्व को ही भूल बैठता है हमेशा के लिए। कैसी बेताबी होती है 'उन्हें' अपने अभ्यासी को उन्नति देते रहने की। किन्तु उनका उत्तर आने से पहले ही मुझे अपनी भूल का एहसास पहले ही हो चुका था और मैंने तुरन्त ही उन्हें दूसरा पत्र भी लिख दिया था कि बाबू जी, मुझसे भूल हो गई है अपने कदमों से लिपटी इस बिटिया को चाहे जब, चाहे जहाँ ले चलें यही मेरी प्रार्थना है।" विश्व को गौरवान्वित करनेवाली उन महा दिव्य-विभूति की अमोघ इच्छा-शक्ति प्राणियों के प्राणों में दिव्य-प्रकाश का दीप जलाकर उनके समस्त सिस्टम को पावन एवं उज्ज्वल बनाती रहे यही प्रार्थना है उनसे कि वे सबको ही अपने पावन-चरणों का सहारा देकर सदैव आफताब की तरह चमकते रहें। श्रद्धा के ऐसे ही पुष्प अर्पण हैं उन प्रिय चरण-द्वय में।

उनकी अलौकिक एवं दैविक कार्य क्षमता के साथ दैविक-दूर-दर्शिता भी वन्दनीय है। कई बार मैंने ऐसा पाया कि उनकी निगहबानी में समाये हम अभ्यासी लोग कभी-कभी चकित हो जाते थे कि हमारे बाबू जी हर समय, हर हालत में हमें कैसे सम्हाले रहते हैं इसलिए हमें और भी चौकन्ना रहना पड़ता था कि कहीं ऐसा न हो कि वे परम पूज्य हमें याद करें और हम उनकी हाजिरी में हाजिर न मिलें।

एक बार मुझे पूजा देने के बाद आदरणीय मास्टर साहब ने श्री बाबू जी महाराज को लिखा कि 'मुझे' कस्तूरी के अन्दर कुछ अँधेरा सा मिला है। मैंने इसे साफ करने की कोशिश भी की लेकिन मैं साफ न कर सका तो अब हुजूर ही बताये कि मैं इसे कैसे साफ करूँ" ? जब पूज्य मास्टर साहब ने मुझे यह बताया तो मैं भी बहुत दुखी हो गई थी कि मुझसे क्या गलती हो गई जो मेरे अन्दर अँधेरा आ गया है। मैंने अपने बाबूजी से प्रार्थना भी की कि मास्टर साहब का पत्र उसके पास पहुँचने से पहले मेरे अन्दर का अँधेरा साफ हो जाये। किन्तु बहुत शीघ्र ही पूज्य मास्टर साहब के पास श्री बाबू जी महाराज का उत्तर आया तो मन हर्ष से भर गया और हृदय उनके पावन चरणार-विन्दों में और भी लिपट गया। उन्होंने लिखा था कि 'मैं ईश्वर सहाय जी की रीडिंग-कैपेसिटी की बहुत प्रशंसा करता हूं कि उन्होंने इतनी बारीक या सूक्ष्म हालत को भी पढ़ लिया है जिसे पढ़ पाना बहुत ही कठिन है। बस उन बेचारे की यही गलती रही कि जिसे वह अँधेरा समझ बैठे थे वास्तव में वह असलियत का रंग था। वास्तव में वहाँ न अँधेरा है और न उजाला है किन्तु जो है, उसे न समझने वाला अँधेरा ही कहेगा। मैं मास्टर साहब की रीडिंग पावर की दाद देता हूं।' नीचे समर्थ सद्-गुरु की आशीष भरी चन्द लाइनें भी लिखी थीं कि 'बिटिया से कह दो कि खुदा ने चाहा तो वह आध्यात्मिकता की चोटी तक जरूर पहुँचेगी और 'आमीन' कहकर तो मानो उन्होंने अर्थात् श्री लाला जी साहब ने अपनी आशीष पर मुहर लगा दी थी। इस मुहर पर मेरे बाबू जी ने जो मुहर लगाई थी उसे मैंने हृदय से चिपका लिया था

उन्होंने लिखा था कि 'मुझे खुशी है कि मेरी हालत की पुनरावृत्ति तो तुममें हो रही है और लाला जी साहब तुम्हारी ऐसी हिम्मत को पाक रक्खे और शक्ति दें ताकि तुम अंतिम सत्य का मुंह देख सको।''

कैसा लगता था तब, जब श्री बाबू जी महाराज का मधुर-स्वर स्वर कर्ण कुहरों में पड़ता था 'कि भाई, मेरे इन्सपेक्टर साहब को बुलाओ।' इतना मान देते थे कि अपने नन्हें-नन्हें अभ्यासियों को, मैं मानों खुद में ही सिमटी सी उनके समक्ष जा खड़ी होती थी।' बाबू जी आपने मुझे बुलाया है ?' और वे मुस्कुराने से मानों एक भिखारिन का भी स्वागत करते हुए से कहते, 'हाँ भाई, हमें अपने इन्सपेक्टर की जरूरत तो बराबर ही पड़ती है चाहे हम प्रिसेप्टर बनायें, चाहे किसी अभ्यासी का इनीशियेशन करें।' एक बात आज और स्मृति को कुरेद कर यह भेद समक्ष में स्पष्ट कर जाती है कि उनके समक्ष कभी मुख से यह नहीं निकलता था कि आप मुझे याद रक्खें क्योंकि वे हमें बुलाकर ले जाने के लिये ही तो आये थे। इस नाम अर्थात् ईन्सपेक्टर से उन्होंने मुझे इस हद तक मशहूर किया था कि अक्सर दक्षिण भारत से आने वाले या विदेशी भाई-बहनों को भी मेरे पास भेजते थे ताकि मैं उनकी दशा के बारे में श्री बाबू जी को लिखूं इतना ही नहीं पत्र में उन लोगों की हालत लिखने पर उत्तर देते थे कि 'तुम्हारे लिखने पर मुझे इत्मीनान हो जाता है।' एक अचम्भा आज मुझे यह भी होता है

कि यह पुस्तक लिखते समय जो भी यादें समक्ष में स्पष्ट होती हैं तो तुरन्त ही उस समय की मेरी आत्मिक-दशा भी समक्ष में स्पष्ट हो उठती है। कदाचित वे चाहते हैं कि जो बात पुस्तक में लिखी जाये वह 'सत्यता' के साथ में ही लिखी जाये। भाई वरदाचारी जी तो भाई पार्थसारथी के साथ, जहाँ भी मैं अपने भाई के पास होती थी वहाँ से मुझे अपने साथ मोटर में लेकर ही शाहजहाँपुर जाते थे और तब तक मुझे साथ रखते थे जब तक वे स्वयं श्री बाबू जी के पास शाहजहाँपुर में रहते थे।

एक बार हम कई अभ्यासी गण श्री बाबू जी के पास बैठे हुए उनके पावन मुखारविन्द की ओर बार-बार देख लेते थे कि कब श्री बाबू जी कुछ बोले कि एक अभ्यासी भाई पूछ बैठे कि 'आप इतना परिश्रम करके हमें आध्यात्मिक क्षेत्र में ले चलते हैं तो आप एकदम से ही हमें जहाँ पहुँचाना चाहते हैं, पहुँचा दें।' याचना तो उन महत् पर्सनैलिटी के समक्ष बहुत साधारण सी ही थी परन्तु उनका उत्तर असाधारण था। वे परमप्रिय बोले 'हाँ कहते तो तुम ठीक हो, मेरा परिश्रम भी बचेगा और तुम्हारा समय भी, लेकिन इसमें दो बातों का भय है। एक तो यह कि यदि 'अन्तिम-सत्य' की हालत पहले ही दे दी जाय जिसके लिए मात्र इतना कहना पर्याप्त होगा कि 'अंतिम-सत्य' की हालत ऐसी ही कह लो जैसे संगे-पत्थर बेनमक, तो फिर कोई मजा न रहने से लोग इसे स्वीकार करने के बजाये इससे बहुत दूर भाग खड़े

होंगे। दूसरे इसमें यह भय भी है कि मेरी शक्ति को सहन कर पाना असंभव होगा क्योंकि मैं इस शक्ति के बारे में स्वयं नहीं जानता हूं कि मुझे लाला जी साहब ने क्या बनाया है।' यह जरूर है कि इस हालत की शक्ति का कोई भौतिक शरीर सहन न कर पायेगा और इसीलिये शरीर जीवित न रह सकेगी। 'अब बतलाइये कहाँ है हम जो उनकी शक्ति के एक विन्दु मात्र को पूर्ण रूप से पी जाने की भी क्षमता नहीं रखते हैं। बास्तविक बात यही है कि हम अपनी गिनती कितनी भी श्रेष्ठ अवस्था वालों में कर लें लेकिन यह सच है कि आज भी उनकी शक्ति, सामर्थ एवं कार्य-क्षमता के आगे कोइ भी नहीं है जो उनकी चरण-धोवन भी बन सके।

बहुधा बेवकूफी भरी बातों को सुन कर भी वे अपने उत्तर से किसी को मायूस नहीं करते थे। एक प्रिसेप्टर की रीडिंग पावर बढ़ाने के लिए प्रार्थना करने पर उन्होंने कहा, 'अपना दिल आइना बना लो तो सामने वाले का हृदय जैसा होगा प्रतिबिम्ब भी वैसा ही होगा तब तुम बिना पढ़े ही पढ़ लोगे। इस जवाब का भला जवाब ही क्या होता प्रिसेप्टर चुप बैठ गये। अभ्यासी के यह पूछने पर कि 'हम अपनी हालत को कैसे रीड करें?' उन्होंने कहा कि 'दिल में बैठे मालिक को निहारते रहो तो हालत खुद ही बोलती जायेगी। 'तब हम भला क्या समझ पाते इन सूत्रों को जो आज एक-एक करके मानों अपने को खोलने के लिए ही समक्ष में स्पष्ट होते चले जाते हैं।

सारे अभ्यासी उनके ही बच्चे हैं, उनका यह भाव देखते ही बनता था। दक्षिण भारत में स्वागत में उन्हें गुलाब के फूलों की मंहगी माला पहनाई जाती थी यह उन्हें अच्छा नहीं लगता था कि 'इतना पैसा खर्च हो। कहते थे भाई, पैसा तो एक है चाहे तुम्हारी जेब से खर्च हुआ या मेरी जेब से खर्च हुआ। खैर ऐसा करो कि दो दिन यदि स्त्रियाँ चोटी में ये ही फूल लगायेंगी तो दो दिन का फूल का पैसा बच जाएगा। यदि स्त्रियाँ जूठे या पहने हुये फूल इस्तेमाल न करती हो तो ये फूल इस्तेमाल किए हुये नहीं है क्योंकि ये पन्नी में बंद हैं तथा मैंने छुये भी नहीं हैं और न मेरे बदन से स्पर्श हुये हैं। ऐसा लगता था कि बिना मुख से कुछ बोले ही अपने आप ही भाईचारे की जान हममें डाल दी। भाई चारा यहाँ तक बढ़ा कि विदेशों से आये हुये अभ्यासी यह कहने लगे कि 'हमें विदेशी अभ्यासी कह कर न बुलाया जाए'।

कभी-कभी ऐसा अचम्भा हो जाता था जो हमारी समझ से परे तो होता ही था किन्तु हृदय मानों उनके चरणों में और भी नत हो जाया करता था। एक बार जब श्री बाबूजी महाराज के घर में ही बसन्तपंचमी का उत्सव मनाया जाता था तो अभ्यासी लोग बाहर मैदान में दोपहर का खाना खा रहे थे। तीसरी पाँत में सभी लोग खाने बैठ गए और दाल समाप्त प्रायः हो गई। हम लोग इस विषय में गुप-चुप कर रहे थे कि देखा ड्योढ़ी में श्री बाबूजी खड़े थे। उन्होंने कहा कि यदि दाल खत्म हो गई है तो कोई बात नहीं है। भगोने में जो थोड़ी दाल है उसमें पानी डाल

कर गरम कर दो । 'दाल वाले भगोने में ही आधा भगोना पानी डालकर गर्म करके सबको परोस दिया गया । हम सब इसी फिक्र में थे कि सब कहेंगे कि दाल का पानी परोस दिया लेकिन सभी उस गर्म दाल की बेहद तारीफ कर रहे थे । जब हम लोगों ने वह दाल खाई तो सच ही लगा कि ऐसी अनोखी दाल कभी खाई ही नहीं थी । इसी तरह जब दाल या सब्जी कम हो जाती हो जाती तो हम सब अपने आप ही गर्म पानी मिला देते परन्तु तब दाल और सब्जी बेस्वाद ही रहती । जब मास्टर साहब ने श्री बाबूजी से यह बात कही तो वे बोले कि 'यह कोई करिश्मा थोड़े ही है जो बार-बार दिखाया जायेगा, यह तो उस समय की जरूरत थी जो लालाजी ने पूरी कर दी' ।

प्राय: कभी - कभी ऐसा भी हो जाया करता है कि कहावत के अनुसार जब धारा सिर से गुजर जाय तब पता नहीं लगता है लेकिन होश आने पर ऐसा कैसे, और क्यों हो गया, इसका उत्तर ढूंढ़े नहीं मिलता है । एक बार घर में देशी घी न था और दूर से आये एक अभ्यासी खाना खाने बैठे । उन्होंने कहा कि हम दाल में घी खाते हैं और घी था नहीं । जब श्री बाबूजी घर में आये तो माया उनकी बड़ी लड़की ने कहा, 'पापा, देशी घी नहीं है और ये भाई घी मांग रहे हैं । उन्होंने तुरन्त कहा कि 'भंडरिया मे एक छोटी घंटी में घी रक्खा है, वह डाल दो । जा कर देखा तो सच ही घी रक्खा था माया ने दाल में घी डाल

दिया। लेकिन हम सभी को यह आश्चर्य रहा कि हम किसी ने भी सो कभी वहाँ घी रक्खा नहीं था, फिर भी वहाँ कैसे आ गया। आज भी जब ऐसी घटनायें याद आती हैं तो मुख से यही निकलता है कि उन्होंने कैसी कृपा की कि लाज बच गई। किन्तु आज मुख से यह कभी नहीं निकलता कि यह उनका कैसा चमत्कार था।

श्री बाबू जी के उत्तर भी लाजबाब होते थे। कभी सोचती हूं तो यह लगता है कि उनकी भाषा अलौकिक नहीं दिव्य थी। एक बार किसी अभ्यासी ने लिखा कि 'बाबूजी अब आपकी याद अक्सर आती है।' तो बड़े सहज शब्दों में आपने सक्षिप्त सा उत्तर दिया 'कि याद आती है तो जाती भी होगी। मैं चाहता हूँ कि 'याद आये भी नहीं और जाये भी नहीं।' इस छोटे से वाक्य मे कितनी अपनायत एवं विराट हृदय का बड़प्पन स्पष्ट झलक उठता है।

एक बार तिरुपति में डा० वरदाचारी से बहुत मुस्कुरा कर बोले कि 'तुम बड़े विचारक हो, फिलासफर हो, लेकिन हम तुम्हें चित कर सकते हैं।' हम सभी कौतूहल से मुस्कुरा उठे कि देखें वे क्या कहेंगे। डा० वरदाचारी मुस्कुराकर बोले' मास्टर आप बतायें कि आप हमें कैसे चित कर सकते हैं।' तो बोले कि 'विचारक या फिलासफर तो माइन्ड से गवर्न होता है और संत हृदय की शक्ति का पूर्ण मास्टर होता है यह मेरी खोज है कि माइन्ड के खेलने की फील्ड हृदय है। यदि हम

समझ सकता है उनकी बातों को, जब तक प्रेम में डूबे हुए हम प्रेक्टिकल कंडीशन से न गुजरें।

एक बार कोई पर्व था और लोग गंगा नहाने जा रहे थे। कुछ लोग खन्नौत नदी, जो शाहजहाँपुर में श्री बाबूजी के घर के पिछवाड़े बहती है, में भी नहा रही थी। श्री बाबूजी अपने पूजा वाले कमरे में खिड़की के पास बैठे थे वहीं बैठकर वे मिशन की लिखा पढ़ी का कार्य करते थे। एकाएक उनकी दृष्टि नदी की ओर गई, बोले 'बिटिया' लोगों को पर्व नहाना भी तो नहीं आता है। जब डूबे ही नहीं तो पर्व नहाये क्या' ? मैं नहीं समझी तो बोले, मैंने यही जाना है कि ( ईश्वरीय - धारा में अपने को डुबोये रक्खो। यदि सेल्फ नहाया ही नहीं तो भला शुद्धि क्या हुई ?' मैं क्या कहती, अवाक् हो उनका मुखारबिन्द निहारती रह गई। किन्तु अपने कामों में बड़े होशियार थे सो फिर बोले कि 'यदि ध्यान के द्वारा डिविनिटी में सेल्फ रहेगा तो अहं गल जायेगा और जिस दिन तुम्हारा अहं भाव गल जायेगा फिर केवल वही वह रह जायेगा जिसके लिए तुमने मिशन को अपनाया है।'

उनमें अपने समर्थ सद्गुरु 'श्री लाला जी' के प्रति प्रेम की पराकाष्ठा की एक छोटी सी झलक तब देखने को मिली जब किसी अभ्यासी ने उन्हें फोन किया। फोन पर वह बोला—'कौन बोल रहा है ?' तो आप बोले कि 'मैं रामचन्दर बोल रहा हूं।'

तो बोले बिटिया अस्पताल बहुत आराम की जगह है। तुम जाओ मैं भी तुम्हारे साथ चलूंगा' और मैंने महसूस किया कि वे मेरे साथ चल रहे हैं। उनके कथन की स्पष्टता पाकर तो तब मैं और चकित रह गई जबकि मेरे वार्ड में घुसते ही डाक्टर एकदम पीछे हटकर बोला कि इस पलंग पर कौन मरीज है ? मैं बाथरूम से वापस आई थी। मैंने पूछा कि क्या बात है। डाक्टर साहब बोले— कि बेबी, तुम्हारे पलंग के चारों ओर प्रकाश फैला है। मैंने कहा कि "मेरे गुरू महराज, मेरे बाबू जी मेरे साथ ही आये हैं।" आश्चर्य यह भी हुआ कि मेरे रहने के काल में मेरे वार्ड का हर मरीज चेतन हो उठा था एवं स्फूर्ति आ गई थी और चेहरों पर खुशी थी। यहाँ गीत गाने की आज्ञा थी। मैं भी बाबू जी महाराज के शान में लिखे गीत गाया करती थी। और मरीज आँखें बन्द करके मानों तब शान्ति पाते थे। ऐसा करिश्मा था मात्र उनके विचार का। इतना ही नहीं, सोते में भी जो विचार उनमें उठता था वह हमारे लिए आध्यात्मिक उन्नति के लिए थ्योरिटी बन जाता था। जैसे एक बार मुझे लिखा कि स्वप्न में मैंने तुम्हें एक प्वाइंट की सैर कराई और जागने पर पाया कि सैर पूरी हो चुकी है। तुम जल्दी ही लिखना कि मेरे अनजाने ही इसमें तुम्हें शरीर में कहीं कोई कष्ट कुछ भी ऐसा एहसास तो नहीं है जो तुम्हें ठीक न लगता हो। सोते में भी जाने क्या कर जाता हूं।" मैंने उनका पत्र आने से पहले ही उन्हें लिखा था कि मुझे लगता है कि अमुक प्वाइन्ट की यात्रा

पूरी हो गई है, और आप मुझे इससे आगे के प्वाइन्ट पर ले गये हैं। कुल शरीर मुझे ऐसा हल्का लग रहा है मानों आंतरिक आराम की लहर दौड़ गई हो। मुझे हर प्वाइन्ट की यात्रा की दशा की पकड़ भी मात्र इसलिए थी कि उन्होंने रिचर्स के लिए जो मुझ पर कृपा की थी तो मैं उसमें पूरी उतर सकूं ऐसी कैंपेसिटी भी आपने ही मुझे बख्शी थी। उनका विचार ही मानों मेरे लिए आइना बन गया था जिसमें पढ़कर मैं उनकी इच्छानुसार हर प्वाइन्ट की हर दशा की अनुभूतियों को उन्हें लिख सकी। उनका यह दिव्य प्रसाद सदैव मुझमें मुखरित रहेगा, मेरे में ऐसा विश्वास भी उनके ही विचार की आधार शिला पर जमा हुआ है। ऐसा प्रभावशाली था उस डिवाइन थाटलेस विभूति का विचार।

"बाबू जी आप हमें बहुत अच्छे लगते हैं" मैंने कहा तो बोले - 'क्योंकि मैं अच्छा हूं।' हम तो ऐसे ही खुश हो गये उनके मुखारविन्दु से शब्द सुनकर। फिर बोले—'जानती हो अच्छाई क्या है ?' हम सब उनका मुख देखने लगे तो धीरे से बोले कि—'जिसमें हमारे लालाजी साहब का नूर है, वह अच्छा ही होगा। अच्छाई का अर्थ है हमारे लाला जी साहब।' सुनकर हम आनन्द विभोर हो गये।

अपने अभ्यासियों को मान देकर, स्वयं अमानी रहकर हमें पग-पग आध्यात्मिक शिक्षा प्रदान करने जाना, यह महानता उनकी सहज विशेषता भी थी और इसके साथ ही प्यार से

अभ्यासी का उत्साह बढ़ाना भी था। उनका वह मधुर स्वर आज भी मेरे कानों में सुन पड़ता है कि 'बिटिया सच तो यह है कि यह सहज मार्ग की आध्यात्मिक—यात्रा तुमने अपनी भक्ति एवं परिश्रम द्वारा ही पूरी की है; मैंने तो तुम्हें मात्र सहारा ही दिया है।' किन्तु मैं यह भली-भाँति जानती हूं कि आध्यात्मिकता क्या चीज है, जो इसकी ए० बी० सी० डी० से भी अनभिज्ञ हो, जो सहज-मार्ग की एवं तेजस्वी साधना के योग्य पात्र भी न हो, उसे हर प्वाइट की यात्रा कराते हुये उसके योग्य समझ भी प्रदान करते हुये एवं तेजस्वी बनाते हुए, हाथ पकड़कर राह दिखाते हुए ले चलने वाले ही थे इसीलिए मैंने यह पाया कि अनन्य शक्ति के बिना, उनके पावन चरणों का सहारा पाना असंभव ही होता है। वे इतनी दिव्य सूक्ष्मता का साया हमें देते हैं कि अनन्यता के बिना उसे पकड़ पाना हमारे लिए संभव ही नहीं हो पाता है। तभी उन्होंने एक वाक्य कह कर मानों हमें संकेत दे कर सचेत भी किया है कि 'मैंने जबसे लाला जी साहब को देखा, तबसे किसी और को देखा ही नहीं।' उनके इस सादे से लगने वाले वाक्य का अर्थ भी अपने में प्रेम की वैसी ही सहज गति उतारे बिना स्पष्ट नहीं हो पाता है। इसका अर्थ केवल यही नहीं है कि हमारी दृष्टि में कोई दूसरा न आये बल्कि इसका सूक्ष्म अर्थ तो यह दशा ही बोलती है कि जब तक उनके साथ होने की अनुभूति भी रहती है तब तक आध्यात्मिक क्षेत्र में हमारी पहुंच अधूरी है। उनमें लय रहते हुये आध्यात्मिक क्षेत्र में आध्यात्मिक-गतियों पर गतियाँ पार करते हुये जब हमें अपना भी पता नहीं मिल

पाता है तभी उनका यह वाक्य हममें या हमारे अंदर सार्थक उठता है। अनन्य का अर्थ है अन-अन्य अर्थात् दूसरा कोई न हो अर्थात् द्वारा कोई अस्तित्व नहीं रहता है।

उनके हृदय की विशालता एवं उनके प्यार की गहराई तलछट भी कोई कैसे पा सकता है। एक बार जब आश्रम की नींव का थोड़ा सा गड्ढा स्वयं ने खोदा तो बोले 'बिटिया, नींव तो खुद गई, अब इसे बनवाने के लिए पैसा तुम्हें ही देना है।' उस समय मेरे पास केवल चार आना यानी २५ पैसे ही थे। मेरे मुँह से तुरंत निकल गया कि 'कि हाँ बाबूजी, मेरे पास पच्चीस पैसे हैं, किन्तु अपना आश्रम मैं जरूर बनवाऊँगी।' यह कह कर मैंने पच्चीस पैसे नींव में डाल दिए। तब उनके साथ घर वापस गई तो मेरे मन में हीनता का भाव उभर पड़ा कि भला पच्चीस पैसे में आश्रम बनेगा? मैंने कहा कि 'बाबूजी महाराज मेरे पास केवल पच्चीस पैसे ही थे, इसमें तो आश्रम के लिए एक ईंट भी नहीं आ सकेगी।' तो उन्होंने तुरंत ही कहा कि तुम्हारे पास जो कुछ था, तुमने सब दे दिया, बस तुम ही तुम्हारे पास नहीं थीं। मेरे अभ्यासियों की यह पावन एकांगी भावना ही तो यह आश्रम तैयार कर देगी। तुम्हारे यह चार आने चार लाख के बराबर सिद्ध होंगे।' और सच ही जब आश्रम के लिए पैसा आता वे कहते 'देखो, बिटिया ने पैसा भेजा है। पच्चीस पैसे में मुझे बिटिया ने खरीद लिया है।' पर बेटी के क्या कहे केवल मौन ही साथ देता था।

यह बात तो सच है कि उन्हें समझ पाना या उनके कहे हुए शब्दों का अर्थ समझ पाना सरल न था । एकबार अपने प्रांगण में मौज में पड़े थे । कुर्सियों और चारपाइयों पर हम सभी बैठे थे । न जाने कुछ बताना था या क्या समझाना था कहने लगे पहले बिटिया पतंजलि के समय में थी, उसने साधना भी की किन्तु मोक्ष (**Salvation**) ही पा सकी, मुक्ति (**Liberation**) नहीं पा सकी इसलिए मोक्ष का सीमित समय बीतने पर संसार में फिर आई और किसान की बेटी बनी । चौदह वर्ष की अवस्था में इसकी मृत्यु हो गई, अब फिर आई है ।" इसी बीच में दूसरे ने पूछा कि 'बाबूजी, हम कौन थे ?' तो वे बताने लगे, वे बता ही रहे थे कि तीसरे ने पूछ लिया कि बाबू जी, आप पूर्व जन्म में कौन थे ?' किन्तु यह उस मुख को देख कर वे कोई नहीं समझ सके कि अभी वह दूसरे अभ्यासी के प्रश्न का उत्तर दे रहे थे जो अपने विषय में पूछ रहा था । वे बोल रहे थे कि बनिया के घर में जन्म हुआ आदि आदि । तीसरे ने अपने प्रश्न के उत्तर में कि बाबू जी आप पूर्व जन्म में कौने थे ? उनका उत्तर लिख लिया । किन्तु उनकी यह मुख-मुद्रा यदि कोई देखता तो अवश्य समझ लेता कि उन्होंने अपने जन्म के बारे में प्रश्न सुना ही नहीं था । तत्पश्चात् मैंने उनसे कहा कि "बाबू जी आपके बारे में जो भी इन्होंने नोट किया है वह गलत है वह आपके विषय में नहीं है बल्कि अभ्यासी के विषय में है ।' श्री बाबू जी की 'आत्मकथा' लिखते समय भी मैंने याद दिलाया था कि यह बात न लिखी जाये क्योंकि यह ठीक नहीं है । उन्होंने

कहा भी था कि बिटिया ठीक कहती है, इसे मत लिखना।' लेकिन मुझे सुनकर बहुत दुःख हुआ कि वही गलत बात छप गई है। लोग जब यह कहते हैं कि लाला जी साहब ने भी ऐसा कहा तो मैंने कहा कि 'जब दो शरीर एक प्राण है तो यदि वे कहेंगे तो क्या लाला जी साहब अलग कहेंगे ?' ऐसे ही किसी अभ्यासी ने पूँछा कि 'बाबू जी, तो आप पतन्जलि ही होंगे' तभी तो 'आपको' मालूम है' तो कहने लगे 'शायद यही हो' और तीसरे ने यह बात भी नोट कर ली किन्तु वे' कौन थे यह तो उन्हें रिअलाइज करके ही जाना जा सकता है यह रहस्य कोई नहीं समझ पाया। आगे आने वाली पीढ़ी इस भल को सुधार ले; 'मालिक' से मेरी यही प्रार्थना है। क्योंकि जब कभी किसी को 'वे' अपना साक्षात्कार कर पाने का सौभाग्य प्रदान करगे तब उस अभ्यासी के आगे स्वतः सारी स्थिति स्पष्ट हो पायेगी और दशा स्वयं ही बोल उठेगी कि 'वे ऊँचे से नीचे आये हैं, नीचे को अर्थात् हम धरती के प्राणियों को ऊपर ले जाने।' अतः यह सच भी उजागर हो गया है कि 'ये अद्भुत ममता, क्षमता का साँचा प्रतीक बन आये हैं।'

'वह' कैसा साँचा-सनातन स्वरूप दिव्य आकर्षण से युक्त था कि हम सब दीवाने की तरह 'उनका' साथ पकड़ना चाहते थे। अक्सर ही कचहरी से लौटकर नाश्ता आदि करके कहते कि 'चलो भाई, सबको बगिया घुमा लायें,' तो हम सभी तो मानों तुरन्त तैयार ही रहते थे। क्योंकि उस दिव्य आकर्षण की चरम

सीमा के आगे सारे अस्तित्व ही तो नत हुये रहते थे। हम सबके साथ 'उनके' व मास्टर साहब के बच्चे भी तैयार होकर चल पड़ते। हम सब लढ़िया (बैलगाड़ी) में सवार होकर जाते थे। उस गाड़ी में, टूटी व कच्ची सड़क पर 'उनका' व हम सबका शरीर हिल - हिल उठता था पर हमारे मुख 'उनके' मुख की ओर टकटकी लगाये कुछ सुनने की आशा में रहते कि वे क्या बोलेंगे। ऐसे ही हिचकोले खाते हम जब बगिया पहुँच जाते तो वे हमें घुमाते और अपने हाथों से अमरूद—तोड़कर खिलाते, खीरा खिलाते और मटर चने की फसल में हरी मटर व चने का साग भी खिलाते थे। नमक वे साथ ही लेकर आते थे। घर लौटने पर यदि हम अपने से पूँछते कि बगिया में क्या हुआ, क्या खाया तो इसका उत्तर कुछ न था हमारे पास। मैं क्या कहूं कि मैं किसके साथ और कहाँ गई थी। हाँ डायरी में जो कुछ लिखती थी वह 'उन्हें' पसन्द आता था। 'उनके लिए मात्र यही कह सकती हूँ कि वास्तव में चमत्कार तो दिखाकर पुन: समेट कर वापस ले लिए जा सकते हैं किन्तु वे जो कृपा करते थे, वह हमारे अंदर सीमिति न रह कर हमें 'हमीं' के संकुचित घेरे से उबार कर बाहर ले आती थी और धीरे-धीरे वह उन दिव्य चरणों में हमें लय-अवस्था प्रदान करने वाली होती थी। ऐसी कृपा बरसाते रहने का तो वे बहाना ही ढूंढ़ा करते थे।

हमारे अंतस् की गहराई में ध्यान के प्रवेश पाने का एवं लक्ष्य के प्रति समर्पण एवं अटेचमेन्ट की परीक्षा भी कभी - कभी 'वे' ने

लिया करते थे । जब हमारे आश्रम का निर्माण कार्य चल रहा था और मेडीटेशन हाल की पैकरिया सीढ़ियाँ) बन रही थीं तो एक बार न जाने प्यार व कृपा के किस मूड में थे बोले कि 'बिटिया' सबके नाम के कमरे बन रहे हैं तुम्हारे नाम का भी एक कमरा हम बनवा दें ।' मेरे मुख से निकल पड़ा कि 'बाबू जी मैं संकुचित भूमि लेकर क्या करूँगी ।' मेडिटेशन हाल में जाने की जो पहली सीढ़ी की ईंट लगे, उसमे कस्तूरी लिखकर लगा दें ताकि आपके चरण कमल पड़ने के साथ अभ्यासियों के पैरों का स्पर्श पाकर हमारा पूरा आश्रम ही भाईचारे के पुष्प सा खिलता हुआ अपनी महक से आश्रम को महकाता रहे। यही मेरी प्रार्थना है । तो बहुत खुश होकर बोले कि 'अब बिटिया होशियार हो गई है । अरे भाई, पैर रखते समय मैं भी तो पैकारियों की तरफ देखूंगा देखो यह मेरी निगाह चुरा लेना चाहती है ।' तब तो इस वाक्य का महत्व मेरी समझ में नहीं आ पाया था, बस इतना ही समझ सकी थी कि कितना प्यार बरसा रहे हैं यह मेरे ऊपर । लेकिन आज, जब वह दिव्य वाणी अपना अर्थ मुझ पर स्पष्ट करती है तो उसकी गहनता को पढ़कर मेरे होश उड जाते हैं । कौन समझ सकता है उनके कथन के अर्थ की गहराई को । इसे तभी समझा जा सकता है जबकि वैसी ही श्रेष्ठ दशा हममें वे उतार देते हैं । उनके वाक्य द्वारा उस स्तर का स्पष्ट अर्थ हमारे अंतर में जब निखर उठता है तब हम बरबस ही गा उठते हैं—

"न कोई रूप है, ना रंग, कहें, बाबू हम,
अजीब रिश्ते से दिल ने इन्हें पुकारा है ॥"

श्री बाबू जी महाराज के एक वाक्य ने तो मुझे अंतिम सत्य के दोराहे पर लाकर खड़ा कर दिया। एक बार न जाने कैसी स्वतंत्र अवस्था में उनके तेजोमय मुख से एक वाक्य स्वतः ही मुखरित हो गया कि 'मेरा हृदय तो एक खुली किताब है लेकिन इसमें लिखा कुछ भी नहीं है। प्यार में शब्द और भाषा कुछ नहीं होती है अतः मेरे हृदय को पढ़ने के लिए तुम्हें प्यार के सागर में छलांग लगानी होगी।' हम एक दूसरे का मुंह ताकते रह गये। मैं इतना ही समझ सकी कि मिलन की चाह के दर्द की चुभन के बिना तड़प रूपी पुष्प मन के मानसरोवर में नहीं खिल पाता है। मैं समझी ही नहीं वरन ऐसा लगा कि मुझे समझाया गया था। श्री बाबू जी ने बताया कि 'तड़प ही एक रास्ता है जो अभ्यासी को अल्टीमेट तक ले जाता है।'

श्री बाबू जी कई बार कहते थे कि अभ्यासी हमें लिखते हैं कि 'हम आपको बहुत याद करते हैं किन्तु 'उनकी याद का असर मुझ तक जब तक न पहुँचे तब तक मैं कैसे समझूं। फिर बोले, 'जानती हो ऐसा क्यों होता है ? क्योंकि मैं वह नहीं हूं जिसे लोग याद में रख लें। मैं तो यादों को ( संस्कारों को ) मिटाने वाला हूँ। मुझे तो लोगों को अपने ध्यान में रखना चाहिए। ध्यान याद से सूक्ष्म होता है।' कौन

समझ सकता है उनकी बातों को, जब तक प्रेम में डूबे हुए हम प्रेक्टिकल कंडीशन से न गुजरें।

एक बार कोई पर्व था और लोग गंगा नहाने जा रहे थे। कुछ लोग खन्नौत नदी, जो शाहजहाँपुर में श्री बाबूजी के घर के पिछवाड़े बहती है, में भी नहा रही थी। श्री बाबूजी अपने पूजा वाले कमरे में खिड़की के पास बैठे थे वहीं बैठकर वे मिशन की लिखा पढ़ी का कार्य करते थे। एकाएक उनकी दृष्टि नदी की ओर गई, बोले 'बिटिया' लोगों को पर्व नहाना भी तो नहीं आता है। जब डूबे ही नहीं तो पर्व नहाये क्या' ? मैं नहीं समझी तो बोले, मैंने यही जाना है कि ( ईश्वरीय - धारा में अपने को डुबोये रक्खो। यदि सेल्फ नहाया ही नहीं तो भला शुद्धि क्या हुई ?' मैं क्या कहती, अवाक् हो उनका मुखारबिन्द निहारती रह गई। किन्तु अपने कामों में बड़े होशियार थे सो फिर बोले कि 'यदि ध्यान के द्वारा डिविनिटी में सेल्फ रहेगा तो अहं गल जायेगा और जिस दिन तुम्हारा अहं भाव गल जायेगा फिर केवल वही वह रह जायेगा जिसके लिए तुमने मिशन को अपनाया है।'

उनमें अपने समर्थ सद्गुरु 'श्री लाला जी' के प्रति प्रेम की पराकाष्ठा की एक छोटी सी झलक तब देखने को मिली जब किसी अभ्यासी ने उन्हें फोन किया। फोन पर वह बोला—'कौन बोल रहा है ?' तो आप बोले कि 'मैं रामचन्दर बोल रहा हूं।'

तो अभ्यासी ने फिर पूंछा कि क्या आप रामचन्द्र बोल रहे हैं ?' तो तुरन्त बोले, नहीं रामचन्द्र तो मेरे लाला जी साहब हैं, मैं तो उनका गुलाम रामचन्दर हूं। सुनकर मुझे रोमांच हो आया यद्यपि लाला जी साहब उनमें मर्ज थे फिर भी उन्होंने खुद के नाम की साम्यता अर्थात् बराबरी का दर्जा अख्तियार न किया। एक बार किसी अभ्यासी के घर गये उसने कहा कि बाबू जी आप हमारे घर आये हैं हमारा घर पवित्र किया, हम पर बड़ी कृपा की। 'वहां तो आप कुछ नहीं बोले। जब वापस घर आये तो बोले, – 'भाई, महात्मा किसी के घर जाता है और घर को पवित्र भी करता है तथा कृपा भी करता है, किन्तु मैंने तो तीन में से एक भी बात नहीं की।' फिर मुड़कर बोले—'जानते हो इसमें फर्क क्या है ?' हम उत्तर के लिए उनका ही मुख निहार रहे थे, प्रतीक्षा कर रहे थे। तुरन्त बोल उठे, 'मुझे कभी ऐसा लगा ही नही कि मैं कही नहीं हूं, हां आता जाता तो शरीर है। रही पवित्रता की बात तो घर तो गंगाजल से भी पवित्र हो जाता है लेकिन हमारे लाला जी साहब ऐसी दिव्य-विभूति के जाने से दिव्यता ही फैलती है जो पवित्रता से परे है।' यह कहकर मुस्कुराने लगे।

एक बार भाई डा. वरदाचारी ने विद्वता से भरा प्रश्न पूंछ डाला। हम भी उनके प्रश्न से चौकन्ने हो गये कि बाबू जी क्या जवाब देंगे। डा. ने पूछा कि 'बहिन ने बताया है कि आपने कहा है कि जब आप छः दिन के थे तब लाला जी साहब की तवज्जोह आप पी रहे थे

किन्तु आपने यह देखा कैसे कि आप छ: दिन के थे ?' हम सभी बाबूजी के मुखारविन्द की ओर देख रहे थे। कि इस प्रश्न का क्या उत्तर होगा। मुख से हुक्के की नली हटाकर बोले कि 'मैं तो जो बालक छ: दिन का था, उसे देख रहा था क्योंकि मुझे ऐसा लगा ही नहीं कि मेरा जन्म हुआ है। मुझे तो ऐसा लग रहा था जैसे वह बालक मुझसे ही शक्ति ले रहा है।

उनके मुख की सरल एवं बाल्यवत् भोलेपन की मुद्रा को देखकर हम बहुत मगन हो जाते थे। एक बार बोले—'मास्टर साहब' ईश्वर सहाय जी जाड़ा बहुत है और दक्षिण भारत की यात्रा पर जाना है। हमारा कोट तो अब बूढ़ा हो गया है लेकिन पैसा पास में है नहीं।' पता लगा कि कोट उन्तीस वर्ष पुराना था। मास्टर साहब तुरन्त बोले—कि 'आप फिक्र न करें, हम इसे उलट कर सिल देंगे तो नया दीखने लगेगा।' बहुत खुश हो गये। मास्टर साहब ने कोट की पूरी सिलाई खोलकर भीतर के कपड़े को बाहर करके और बाहर के कपड़े को भीतर करके कोट सिल दिया। हम लोग दंग रह गये, कोट तो सच में बिल्कुल नया लगने लगा था। बाबू जी तो इतने खुश हो गये और बोले—'कि 'मास्टर साहब' अब तो हमें फिर उन्तीस बरस की छुट्टी हो गई।' कहाँ मिलेगा वाह्य की सादगी का ऐसा नमूना। एक भी पैसा व्यर्थ न जाये इसके लिए हमेशा सजग रहते थे।

एक बार बोले कि 'मास्टर साहब, हम प्रेस व आफिस के लिए जगह तो घर में दे देंगे तथा ईंटें व कुछ चूना भी हमारे पास है क्योंकि बाढ़ आने पर सामने का फाटक व दीवार इत्यादि सब गिर गई थी, उन्हें बनवाने के लिए जो सामान मंगवाया था उसमें से कुछ सामान बच गया था सो रक्खा है। मास्टर साहब बोले कि बच्चे सब मौजूद हैं। ये सब ईंट, गारा, चूना, हमें दे देंगे तथा प्रेस और आफिस दोनों ही इस सामान से बन जायेंगे हम सब बच्चे जुट गये और प्रेस व आफिस मास्टर साहब ने स्वयं बनाकर खड़ा कर दिया जो आज भी खड़ा हुआ है। श्री बाबू जी महाराज बोले, 'मास्टर साहब, तुम तो हमारा दाहिना हाथ हो। हर सेवा हर कार्य यहाँ तक कि बच्चों को पढ़ाने के कार्य में भी तुम लगे रहते हो।' वास्तव में मास्टर साहब की सेवकाई का दूसरा नमूना न था हमारे मिशन में।

श्री बाबू जी बहुत ही मितव्ययी थे। एक जगह से दूसरी जगह जाते समय जब अभ्यासी साथ चलने का आग्रह करते तो सदैव प्रेम से समझाते कि 'भाई, अभी तीन दिन तो मैं तुम्हारे बीच में रहा ही हूं। यहाँ मेरा काम समाप्त हो गया है अब दूसरी जगह जा रहा हूं। तुम्हारे ऊपर अब कुछ काम करने को है नहीं क्योंकि तुम्हारे ऊपर जो काम मैंने किया है, उसे हज्म कर पाने में ही महीनों लग जायेंगे, इसलिए दूसरे सेन्टरों पर जाने से अब तुम उस सेन्टर पर व्यर्थ ही बोझ डालोगे और किराये में पैसा भी व्यर्थ में ही खर्च करोगे।

पैसा चाहे मेरी जेब से गया या तुम्हारी जेब से गया। पैसा तो हम सबका ही है इसे व्यर्थ खर्च न करो।' एक ओर से ऐसी मितव्ययता और दूसरी ओर किसी अभ्यासी के बच्चों के विवाह आदि में ग्यारह रुपये का मनीआर्डर भेजने से नहीं चूकते थे। मास्टर साहब ने कहा— कि 'बाबूजी अब सत्संग तो बढ़ रहा है आप इतना खर्चा क्यों उठा रहे हैं?' बोले, 'इस बहाने से मैं अपने लोगों को सिखा रहा हूं कि यदि काम-काज में हममें से हर एक ग्यारह रुपये भी भेजते रहें तो उस अभ्यासी को रुपये की मदद मिल जायेगी। यदि साठ अभ्यासी ऐसा करेंगे तो उसे ६६० रुपये की मदद मिलेगी।' शिक्षा तो हमें उनकी हर बात से और हर एक्शन से मिलती थी।

एक बार बोले—'भाई आज थोड़ी गपशप कर लें। मास्टर साहब तुरन्त ही कागज कलम लेकर तैयार बैठ गये। एकाएक बोले— "भाई हम काम ही क्या करते है काम तो हमारे लाला जी करते है। हमारा काम तो इन्सान को इन्सानियत के दायरे मे लाकर उसे जगा देना है। फिर तो उसका भला खुद ईश्वर करेगा।' मास्टर साहब बोले बाबू जी फिर ईश्वर तक हमें पहुँचायेगा कौन, क्योंकि बिना उसके दायरे में पहुँचे वह हमारा भला क्या करेगा।' तो हाजर जवाब तुरन्त ही बोले, 'अच्छा भाई, अगर तुम हमें इजाजत दोगे तो यह काम भी लाला जी साहब के करम से हम ही पूरा कर देंगे।' मास्टर साहब ने पुन: पूंछा कि 'बाबू जी, आपनें जो अल्टीमेट तक पहुँचाने की

बात की है, उसे कौन पूरा करेगा ?' तो मुस्कुरा कर बोल उठे कि फिर तो हमारा राज्य होगा, अपने लाला जी साहब की नजरों के आगे पूर्ण आजादी से में यह सेवा भी पूरी कर सकूंगा। मास्टर साहब ने पुनः कहा है कि' फिर शेष ही क्या रह जायेगा करने के लिए।' तो मुख से हुक्का हटा कर बोल उठे कि 'शेष का भी जहाँ शेष रह जायेगा, वहाँ तो बस हमारे लाला जी साहब का करिश्मा ही होगा ओर क्या होगा, खैर अब आगे जाने दो।' हम सब केवल इनकी मुख मुद्रा देखते हुये चुप्पी साधे बैठे हुये थे। उनकी 'गपशप' की बातें समझ पानी ही हमारी समझ से परे था।

'हम कैसे जाने कि हमारे अंदर ट्रांसमिशन का कार्य सही ढंग से हो रहा है ? यह प्रश्न एक अभ्यासी का था ? तो बोले, बहुत आसान हैं। यदि तुम्हें ट्रांसमिशन का सही इफेक्ट जानना है तो अपने अन्दर हुये परिवर्तनों का निरीक्षण करते रहना चाहिए। अपनी रहनी में सादगी का प्रवेश, वाणी में स्थिरता एवं व्यवहार में स्वाभाविक अपनायत से भरे सन्तों की मुद्रा (Saintly Expression) का आगमन ही यह सूचना देता है कि हमारा आध्यात्मिक निर्माण हो रहा है। यदि निर्माण कार्य प्रारंभ हो गया है तो समझ लेना चाहिए कि विनाश का कार्य (खुदी का) साथ ही चल रहा होगा।'

एक बार न जाने किस बात पर खुश हो गये अपने गुरु भाई पं० रामेश्वर प्रसाद जी से बोले कि "बिटिया को इनाम

देने का मन है। वे बोले 'फिर देर क्यों है भाई साहब. लेकिन जरा संयत अवस्था में क्योंकि आपकी दरियादिली का इनाम यह बर्दाश्त नहीं कर सकतीं है।' तो जरा सा फिक्र में पड़ गये और बोले — 'दिल अब बिना कुछ अदा किये बगैर नहीं मानेगा।' तो गुरु भाई बोले—'तो फिर शुरू कीजिए।' बस मुझे पूजा के कमरे में ले जाकर बाबू जी बोले, 'ध्यान में बैठ जाओ।' मैंने उन दोनों की बातें सुनी थीं लेकिन समझी कुछ भी नहीं थी। बस आँखे बन्द करके ध्यान में बैठ गई। श्री बाबू जी महाराज पूरे कमरे में इस तरह तेजी से टहलते हुये मुझे ट्रांसमिट कर रहे थे कि मानों बख्शीसें जब्त नहीं कर पा रहे हों पाँच मिनट ही बीते होंगे कि बाहर से उनके गुरु भाई (पापा) कमरे में आकर बोले कि 'भाई साहब अब बस करें। पिंड और ब्रह्मांड की विलायत मिल्कियत तो आप बख्श ही चुके हैं अब और बिटिया सहन नहीं कर पायेगी।' तब लगा कि मानों उन्हें जर्क सा लगा हो और एकदम से बैठ गये। उस समय तो मैं मात्र इतना ही समझ पाई थी कि हृदय ने बहुत कुछ पाया है लेकिन पिंड देश एवं ब्रह्मांड देश की विलायत अर्थात् दोनों जगह ही शक्ति पर मिल्कियत पाई है उसे जज्ब करके तीन वर्ष बाद ही श्री बाबू जी को इनकी शक्ति के बारे में लिख सकी थी।

बहुधा ऐसा होता ही था कि दक्षिण भारत की यात्रा से लौटने के बाद घर की नौकरानियों-मेहरी, महाराजिन तथा प्रेस के कार्यकर्त्ता उन्हें

हड़ताल पर ही मिलते थे, लेकिन उनकी वाणी में कमाल का जादू था कि यात्रा से आने के बाद जहाँ एक चक्कर इन लोगों के घर का लगाया कि सब लोग पुन: काम पर लौट आते थे। दयालु ऐसे कि जब किसी प्रेस कार्यकर्त्ता या नौकर का दाँत दर्द करता तो उसे निकलवाने के लिए तुरंत दस रुपये देते और पाँच रुपये दूध आदि पीने के लिए दे देते थे किन्तु स्वयं तो अपने हिलते हुए दाँत में डोरा फंसा कर किसी छोटे बच्चे से धीरे-धीरे हिलवाते थे जिससे दाँत टूट जाये। घर के सभी नौकर-नौकरानियाँ सदा यही कहते थे कि 'बाबू जी, हम तुम्हें छोड़ नहीं सकते हैं, इसीलिए ड्योढ़ी पर पड़े हैं।' सभी के साथ उनका व्यवहार बहुत प्रेम भरा ही रहता था। ध्यान से उन्हें देखने पर यही लगता था कि यह व्यवहार तो उनके बाह्य रूप का एक सौन्दर्य बन गया है।

मासूमियत एवं श्रेष्ठता का अनोखा सगम था। श्री बाबू जी की लड़की का विवाह था। विदाई के बाद मास्टर साहब ने याद दिलाई कि 'बाबू जी आप चार दिनों से सोये नहीं है, अतः सो लीजिए।' तब मानों उन्हें याद आई हो और बोले, 'तो क्या सच ही मास्टर साहब, हम सो लें, तुम सब काम संभाल लोगे।' वे बोले, 'हाँ बाबू जी।' और तब ही श्री बाबू जी नन्हें बच्चे की भाँति सो गये। जब शाम को उठे तो बोले, 'देखा मास्टर साहब, हमें लाला जी साहब ने सोने का विचार ही नहीं दिया तो हमें भी सोने की याद नहीं रही और जब सोने का

ख्याल नहीं आया तो थकान का एहसास भी नहीं हुआ, क्योंकि लाला जी साहब थकान को तो खुद ही दूर करते रहे। अब तुम ही बताओ कि ऐसा सदगुरू भला किसी को मिला होगा ? यह तो मेरी ही किस्मत थी।'

वे छोटे से छोटे आदमी को भी कितना महत्व देते थे। उदाहरण स्वरूप जब उनके पुत्र दिनेश की मृत्यु हुई तो उनके समधी व अन्य आने-जाने वालों ने कहा कि 'थोड़ा सा रो लीजिए बाब जी।' तो बोले, मेरे पास समय ही कहां है रोने के लिए। मेरा चपरासी कहता है कि गये के लिए दुआ करो जीवितों की सेवा करो। देखो कितनी अच्छी बात बताई है उसने।

मास्टर ईश्वर सहाय जी को वे बहुत प्यार करते थे। एक बार उनसे बोले कि 'तुम लोग बड़े दरियादिल हो, जो चाहों मिनटों में मुझे दे सकते हो।' मास्टर साहब ने कहा कि 'हुजूर, हमारे पास आपको देने के लिए कुछ भी नहीं है।' बोले, "तुम्हारे पास तो सब कुछ है। अगर तुम्हारे पास कुछ न होता तो मुझे यहां आना ही न पड़ता। तुमसे अपनी चीज वापस लेने आया हूं अर्थात तुम्हारा सामान लेकर सांचे जीव के रूप में तुम्हें संवार कर 'घर' वापस ले जाना है।' सुनकर मास्टर साहब की आंखे अश्रु पूरित हो गई।

एक बार वे अपने स्वाभाविक मजाक के मूड में थे। बोले,

'मास्टर साहब आज एक भेदवाली बात हम ुन्हें ब ायें कि जो हमारे पास आते हैं उन्हें हम बेवकूफ बनाते हैं। लोग हमारे पास आध्यात्मिकता लेने के लिए तो आते है। मगर ज हमारे पास आते हैं, तब उन्हें लगता है कि राम चन्दर हमें बेवक ा बना रहा है। यह तो स्वयं ही लुटा हुआ है यह हमे कैसे पहुँचायेगा क्योंकि हम कहते हैं कि तुम अनुभव करो तो ध्यान में बैठने या आँखें बन्द करके उन्हें क्या मिलता है अभी वह नहीं समझ पाते हैं। इसलिए भाई अभी तो मृगतृष्णावश मैं ही सबको समेटता हूं और अंत में उनकी 'खुदी ही लुट जाती हैं, तो बताओ अभी बना रहे हैं न बेवकूफ सबको।' ऐसी होती थी उनकी मजाक की बातें।

एक और मजाक की बात उन्होंने पुनः सुनाई। बोले, 'आश्रम तैयार हो जाने पर लाला जी साहब ने कहा कि 'तुम तो कहते थे कि बैठने की जगह कम पड़ रही है और बनवा लिया यह महल अर्थात् इतना भारी आश्रम।' तो यह तो सच था कि हमने 'उनसे' पैसा तो यही कहकर माँगा था कि अब बैठने की जगह की तो बहुत कमी पड़ रही है तो शिकायत तो सही थी'। मास्टर साहब हँसकर बोले—'तो हुजूर ने क्या जवाब दिया।' तुरन्त बोले—हमऊ' ने कह दी कि हमतो यह समझे थे कि हुजूर सिर्फ सच्चाई ही देखेगे।' हम सब दंग रह गये उनकी होशियारी देखकर। पुनः बोले—लाला जी साहब हमारी बात सुनकर मुस्कुराने लगे फिर हम शेर हो गये।

अदना से अदना अभ्यासी को भी मायूस करना तो वे जानते ही नहीं थे। एक अभ्यासी बहिन के पूछने पर कि 'हम तो कुछ भी पढ़ी-लिखी नहीं हैं, आपकी किताब तक नहीं पढ़ पाती और न समझ पाती हूं। तो आप तुरन्त बोले—तुम्हें ईश्वर सबसे जल्दी मिलेगा क्योंकि वह बेचारा पढ़ा लिखा नहीं है क्योंकि उसके जमाने में मदरसा नहीं थे जो बेचारा पढ़ता लिखता। इसलिए वह श्रेष्ठ ज्ञान का भण्डार है। उससे चिपक जाने पर ही मनुष्य ज्ञानी कहलाता है।'

एक दिन मौज में थे तो बोले—'जानते हो रियलाइजेशन सबके हिस्से में क्यों नहीं आता है? दशायें तो सबके लिए आती हैं और उसके आनन्द का भोग सबके हिस्से में आता है मगर लक्ष्य को याद में रखते हुए दशा का आनन्द उठाते चलो तभी तो उसका साक्षात्कार भी तुम्हारे हिस्से में जरूर आयेगा।' एक दिन बोले—'लोग हमें महात्मा समझते हैं लेकिन हमारी कलई तो यह है कि प्रथम दृष्टि में ही जिसकी निगाह मुझ पर टिक जाती है तो समझ लो कि ऊँच नीच, छोटा-बड़ा बाहर-भीतर उसके लिए सब कुछ समाप्त हो जाता है, यह है हमारी तारीफ।'

एक दिन रूप के ध्यान के विषय में हम लोग आपस में बात कर रहे थे। वे हुक्का पीते हुए चुपचाप बैठे सुन रहे थे। एकाएक बोले—'अगर तुम मेरे रूप को अन्दर बैठा लो तो मैं

तुम्हारे अंदर कैद रहूँगा और तुम मेरे अंदर। दोनों ही कैद में रहेंगे जबकि लाला जी साहब ने मुझे आजाद ही भेजा है। तुम हमें देखो, और हम तुम्हें देखें इससे कुछ फायदा नहीं होगा।' उन्होंने पुनः कहा कि 'जब हम किसी बड़े के साये को पकड़ते है तो आप सदैव उसके साये की छाँव में हैं, यह बात सदैव ही ध्यान में रहे और सदैव उसके वरद हस्त के नीचे रहें तभी आध्यात्मिक-पथ पर चलने का मजा है और तभी आदमी ईश्वरीय-देश में पहुँच सकता है। सूरज से जितना दूर रहेंगें तो आपका साया लम्बा होता जायेगा लेकिन आप यदि सूरज के नीचे रहेंगे तो आपका साया अहं भाव आप में ही समा जायेगा।'

किसी ने पूछा बाबू जी, आपके यहाँ ध्यान दिल पर शुरू करते हैं, और दस वर्ष बाद भी अभ्यासी दिल पर ही ध्यान करता है तो यह कैसी उन्नति है।' बाबू जी हँस कर बोले, पेड़ कितना ही लम्बा क्यों न हो जाये, पानी उसकी जड़ में ही दिया जाता है।'

उन्हें अभ्यासियों के खाने-पीने की आदत का भी कितना ध्यान रहता था। उसका एक उदाहरण है हमारे सामने। एक बार दक्षिण भारत से आये अभ्यासी को जब दूध दिया गया तो आप बड़ी जल्दी उठ कर अन्दर गये और चुटकी भर हल्दी ला कर बोले, 'लो दूध में डाल लो, तुम्हारी आदत है।' हम देखते ही रह गये।

हमें जब भी कुछ समझना होता था तो पहले खुद करके बतलाते थे। एक दिन अपनी नौकरानी मालिन को आवाज दी। मालिन आ गई तो बोले, 'देखा, आवाज का महत्व नहीं है बल्कि महत्व है बुलाने वाले का ध्यान। बुलाते समय मेरा ध्यान मालिन की तरफ था सो ध्यान की धारा मालिन से टकराई और वह आ गई। और लोगों ने भी मेरी आवाज सुनी लेकिन भेजा मालिन को ही। देखा तुमने ईश्वर की नेचर का महत्व।' फिर बोले, 'छोटे बालक का ध्यान कुछ नहीं होता है केवल रोने की आवाज होती है लेकिन माँ का ध्यान उसकी ओर होता है तो असर एक जैसा ही होता है जबकि पोजीशन दो है। तो बताओ, जब तक हम छोटे होते है आरंभिक अभ्यासी तब तक हमारे सदगुरु लाला जी का ध्यान बच्चो की तरफ था तो बच्चे का रोना उनके ध्यान से टकराता है लेकिन जब अभ्यासी का ध्यान परिपक्व अवस्था पर लेता है प्रकृति जब हमारा ध्यान 'उनमें' ही लगा रहता है तो ईश्वरी-धारा बराबर हमें कुछ प्रदान करती रहती है। यही है हमारे ध्यान की महत्ता।' इतने सरल से उदाहरण के बीच वे कितनी बड़ी बात हमें समझा देते थे।

उनका कहना था कि 'मेरे यहाँ आते ही लोग समझने लगते हैं कि हम तो प्रेम की प्रगाढ़ अवस्था पा गये है लेकिन मैंने तो बाइस वर्ष जिस बेचैनी में बिताये है यदि किसी को ऐसी बेचैनी चन्द दिनों के लिए नसीब हो जाये तो सच मानिये

जिन्दगी से ही जुदाई मिल जायेगी। यह तो लाला जी साहब की बरकत है जो हमारे नसीब में आई।' उन्होंने बतलाया कि सहज मार्ग-साधना पद्धति का आधार रियलिटी है इसलिए जैसे हमारी दशा 'ए' प्वाइन्ट की है तो इस प्वाइन्ट की यात्रा पूर्ण होते ही प्वाइन्ट 'बी' की दशा रिफलेक्ट करती रहती है। जब तक यह दशा सूक्ष्म होकर उसमें अर्थात् पहले प्वाइन्ट ए में लय नहीं हो जाती है तब तक हम अगले प्वाइन्ट पर नहीं पहुँच सकते हैं। इस प्वाइन्ट्स की दशा पढ़ने के लिए बहुत सतर्क निगाह होनी चाहिये।'

जाड़े के दिन थे। श्री बाबू जी अपने हल्के से कम्बल से दाहिना हाथ, शायद हुक्के के लिए, निकाले हुए बरामदे में कुर्सी पर बैठे हुए थे। कुर्सी पर गद्दी तक नहीं बिछी थी, केवल एक पतला सा कालीन नुमा टुकड़ा बिछा रहता था। बोले—'अम्मा जाड़ा बहुत लग रहा है और जाड़ा लगने पर हम बातें ज्यादा करने लगते हैं जिससे जाड़ा कुछ कम हो जाये। 'मेरी माँ को अम्मा कहते थे। पुनः बोले—'अम्मा, हम तुम्हें बड़े भेद की बात बताते हैं।' बस हम सभी के मुख 'उनके मुखारविन्दु पर टिक गये। ऐसे समय 'उनके' मुख की आभा से प्रगट होता था कि वे मानों हमारे बीच में डिवाइन महफिल की शोभा बने बैठे हैं। बोले—'जानती हो अम्मा, हमें सबसे प्यारा कौन है?' फिर स्वतः ही उत्तर दे बैठे कि 'जो मुझे कभी याद नहीं करता है।' हम सब तो आवाक् 'उनके' मुख को देखते हुए मानों खुद को ही

भूल बैठे थे कि धीरे से बोले—'क्योंकि वह तो याद में ही डूबा रहता है इसलिए उसका ध्यान मुझे भी बराबर बना रहता है।

जहाँ तक मुझे याद है, मेरे मिशन में आने के छः सात महीने बाद ही श्री बाबू जी की पत्नी अर्थात् हमारी स्नेहशीला माता जी का महाप्रस्थान हुआ था। समाचार मिलते ही हम सब दुःख से भरे शाहजहाँपुर पहुँचे। श्री बाबू जी के सभी बच्चे छोटे थे। बड़े पुत्र प्रकाश दद्दा तब वकालत पढ़ रहे थे, उनसे छोटे तीन सुपुत्र व दो सुपुत्रियाँ थीं। सबसे छोटे पुत्र सर्वेश की अवस्था उस समय ढाई वर्ष की रही होगी। यह पुत्र रोगी भी बहुत था। बच्चों को देखकर बड़ा दुःख लगा। शाम को जब पापा जी श्री बाबू जी के प्यारे गुरुभाई जिन्हें श्री बाबू जी महाराज ने अपनी पुस्तक Reality At Dawn समर्पित की है। घर पर आये तो हम सब उन्हें घेर कर बैठ गये। वे बताने लगे कि 'मैं अपने जीवन के कुछ वर्ष भाभी जी को ट्रांसफर कर सकता था लेकिन बाबू जी ने बस मुझे यही आदेश दिया कि इस समय इन्हें जिस चीज की जरूरत है बस वही दो। फिर वही करना पड़ा।' उन्होंने कहा—'रामेश्वर तुम्हारा कीमती जीवन लाला जी साहब के काम के लिए है। तुम हमारे दाहिने हाथ हो।' आगे बताया कि डिवाइन पावर की चार्जिंग अर्थात् दिव्य-शक्ति से माता जी का शरीर ऐसा सराबोर हो गया था कि जैसा पास-पड़ोस की स्त्रियों व स्वयं उनकी पुत्रियों ने

बताया कि अंतिम समय जब उनके चरण-स्पर्श किये तो शनि का मानों अर्क सा लग रहा था जो दु:ख को भुला देता था। तबसे ही मानों पूरे घर की व्यवस्था का चार्ज नौकरों का, महाराजिन, महरी आदि सभी को रखने तक का चार्ज श्री बाबू जी महाराज ने इस तरह से संभाला कि मानों वे इसे हमेशा से ही करते चले आ रहे हों। घरेलू मुकदमें आदि में लेकर गाय बैलों के पानी चारा तथा जगह की सफाई की फिक्र भी उन्होंने ही ओढ़ ली थी। हमारे लिए आश्चर्य व शिक्षाप्रद बात यह थी कि वे जहाँ इन कामों से हटे कि लाला जी साहब की चदरिया में लिपट गये। कहते थे, 'खाक' की अपनी कोई कीमत होती है लेकिन जब खाक भी खाक हो जाय तो उसके लिए आप क्या कहेंगे।' हम में से कौन समझ पाता इन दिव्य सूक्तियों का अर्थ।

उनका कथन था कि 'सादगी की दशा में वह दैविक-शक्ति होती है कि कोई भी चीज जो हमारे अन्तस को मैला कर सकती है उसे वह अर्थात सादगी हमारे अंतर में प्रवेश ही नहीं होने देती है। 'ऐसे ही किसी के यह पूछने पर कि ज्ञान के बारे में पुस्तकों में बहुत कुछ लिखा है लेकिन आपकी डिविनिटी की पुस्तक में ज्ञान का क्या अर्थ है? तुरन्त बोले कि 'ज्ञानरहित ज्ञान जो खुदी की खाक के बिछौने पर सद्गुरू के पावन हस्त कमलों के साये के ओढ़ने के नीचे ही मिल पाता है।' हम तो ऐसे सुनते थें मानों यह सारी बाते सुनने से परे हों यानी

सुनते हुये भी सुन नहीं पाते थे बस उनका बोलते रहना ही हमें अच्छा लगता था।

मैंने यही पाया है कि उनके कथन को खुद में उतारने का प्रयत्न अभ्यास द्वारा ही संभव हो सकता है। एक बार ऐसा हो जाने पर ही उसे समझा जा सकता है। यह कहने पर कि लोगों को चाहिये कि अपनी हाजिरी हमेशा देने की कोशिश करें और बाबू जी ने कहा—कभी मेरी भी हाजिरी ले लिया करें अपने पास। यह जरूर है कि मेरी हाजिरी तो उन्हें हमेशा मिलेगी क्योंकि मैं तो हाजिर यानी आया ही इसीलिए हूँ, किन्तु लोगों के सामने तो गृहस्थी आदि की समस्यायें ज्यादा होने का बहाना है अपने गैर हाजिर रहने का, लेकिन मेरे साथ ऐसा बहाना भी नहीं है।'

एक बार किसी अभ्यासी के यह पूछने पर कि 'बाबू जी' अमुक जगह हम भी आपके साथ चलें'? धीरे से बोले, 'लोग मेरे पीछे भागने की कोशिश क्यों करते हैं? मैं तो चाहता हूँ कि उन्हें ऐसी कोशिश करना चाहिए ताकि मैं उनके पीछे भागूं।' प्रेम की ऐसी दशा को पाये बिना कौन समझ पायेगा उनके कथन की स्पष्टता को। एक बार अभ्यासी ने पत्र में पूछा कि 'आपके' पास शाहजहाँपुर आने की आज्ञा चाहता हूँ, जबकि वे पंद्रह दिनों पहले ही शाहजहाँपुर आ कर वापस गये थे। बाबू जी का उत्तर था, मेरे पास आने के लिए आज्ञा की

आवश्यकता नहीं है, मुझे अपने पास ही टटोलो तो शाहजहाँपुर का नाम भूल जाओगे और पैसे भी बच जायेंगे।' एक बार किसी प्रकरण में मुझे लिखा कि 'लोगों को चाहिए कि अब मँहगाई बढ़ने पर मेरी भी तनखवाह बढ़ा दें पुनः बोले—कि मेरी तनखवाह कीमत नहीं माँगती है बस अपनी याद मुझ तक पहुँचाते रहें।' पढ़कर मैं गदगद हो उठी, बस उस समय भला मैं क्या समझ पाती।

किसी विदेशी बहिन का पत्र आया कि 'बाबूजी 'अब आप यहाँ कब आयेंगे, हम आपके पास कब आ पायेंगे ? उत्तर था कि 'मुझे तो मिशन के दस काम हैं तुम खाली हो रोज ही चली आया करो मिल जाया करो।' उनका यह नेह-निमन्त्रण वास्तव में हम अभ्यासियों के लिए चेतावनी एवं एक प्यार भरी चुनौती थी कि वह जो सबमें ही व्याप्त, सर्वशक्तिमान रूप में विद्यमान है, उनसे ही मिलने अर्थात् उनका ही साक्षात्कार पाने की कोशिश उनके प्यार में डूबकर ही करें।

एक दिन एक जन श्री बाबू जी से मिलने आये और लगे अपनी समाज सेवा का बखान करने। आप हुक्का पीते चुपचाप सुनते रहे। ऐसे अवसर पर जब कोई अपनी ही गाथा गाने लगता था तो आप हुक्का कुछ ज्यादा ही पीने लगते थे। जब वे सज्जन चले गये तब वे बोले 'सच मानों वे तो सो सो सेवी थे। समाज-सेवी तो हम

है जो श्री लाला जी साहब की कृपा से समाज की विचार-धारा को प्राण-शक्ति द्वारा उमवे आध्यात्मिक स्तर के निखार लाकर उसे सत्संग के समाज में बदल देने की कोशिश में लगे हुए हैं।'

लोग तो बालकों की भाँति उनसे तरह तरह के प्रश्न पूछते थे किन्तु वे बालकों की तोतली भाषा को मान देते हुए उत्तर देते थे। एक अभ्यासी ने बे मतलब का प्रश्न पूछ दिया कि 'बाबूजी, ऋषि लोग चार हजार वर्ष तक कैसे जीते थे ? उनका शरीर भी ज्यों का त्यों बना रहता था 'श्री बाबू जी ने बताया, 'कि हर पीरियड पर जब उनको लगता था कि शरीर के विनाश का समय है, उस वक्त वह अपनी उम्र की चाभी घुमा देते थे फिर उनका जीवन-काल बढ़ जाता था। जैसे घड़ी में १२ बजने के १ मिनट पहले इच्छा-शक्ति द्वारा सुई को बारह से आगे निकाल दें तो वह पुनः एक से चलती हुई बारह पर पहुँच पायेगी।' कभी हँसते हुये कहते थे कि 'हम अपनी रुचि को प्रेम की सज्ञा दे देते हैं लेकिन यह नहीं समझते है कि जब कोई उच्चतम लक्ष्य लेता है वहाँ पर ही उसे भक्ति एवं प्रेम का सहारा मिलता है। पतंग उड़ाने वाले को लोग पतंग-बाज़ ही कहते हैं पतंग-प्रेमी नहीं।'

एक बार भाई वरदाचारी जी ने पूछा कि 'साहब आपने इतनी पतली किताबें लिखी हैं और इतने सादे शब्दों में, कि विद्वान तो आपकी पुस्तकों को छुयेंगे भी नहीं ?' आप तुरन्त

बोले कि 'रियेलिटी पर कभी ग्रन्थ नहीं लिखे जा सकते हैं। मैं तो संकल्प ले कर आया हूँ इसलिए कुछ लिख भी दिया, नहीं तो रियेलिटी पर भला लिखा ही क्या जा सकता है।'

एक बार एक अभ्यासी ने पूछा कि 'बाबू जी अमुक साहब से आपने सरल भाव से क्यों व्यवहार किया ? उन्होंने तपाक से उत्तर दिया कि 'बड़ों के व्यवहार के विषय में कुछ प्रश्न मत पूछो क्योंकि तुम तो उससे सीखने आये हो। वह जो बताये वह करो और उसके कार्य से शिक्षा ग्रहण करो।' उनके ऐसे ही शिक्षाप्रद संदेश हमारे लिए रहते थे कि 'अगर अच्छे मनुष्य बनना चाहते हो तो उसकी अच्छाई से नाता जोड़ो और इस पर अडिग हो जाओ। चाहे मैं हूँ चाहे कोई महात्मा हो, यदि तुम साक्षात्कार चाहते हो तो साध्य से रिश्ता जोड़ो और उस पर अडिग हो जाओ।'

तिरुपती में एक दिन श्री बाबू जी हँसी के मूड में थे। डाक्टर वरदाचारी ने कहा, हम तो इतना बोलते हैं कि यदि हमें रोका न जाय तो हम तीन-चार महीने बोलते ही रहे। श्री बाबू जी महाराज उलट कर बोले, यदि हमसे बोला न जाय तो हमें बोलने की याद ही न आये। सच तो यह है कि अपने दैविक-कार्य करने से ध्यान हटे और जिन्दगी का ध्यान आये तब तो कुछ बोलें। किन्तु ये दोनों कार्य हमारे लाला जी साहब ही करते हैं।' तो देखा न डाक्टर कि हममें तुममें कितनी

समानता है।' हम सभी हँसने लगे।

एक बार मैंने पूँछा कि बाबू जी आपकी किताबें तो मैंने पढ़ा नहीं हैं ?' वे बोले 'मैंने कब कहा कि तुम किताब पढ़ो। मेरा दिल एक खुली किताब है। इसमें न कोई भाषा लिखी है और न कोई शब्द। इसे प्रेम से अपनाया जा सकता है और ढाई अक्षर यानी प्रम शब्द भी जब भूल जाये तब यह किताब पढ़ी जा सकती है। हिम्मत रक्खो तो इसे पढ़ने में सफलता मिलेगी।'

एक बार श्री बाबू जी ने अपने गुरुभाई डॉ० श्री कृष्ण लाल जी के विषय में बताया कि लाल जी साहब से अक्स कहते थे कि मेरी दुनियाबी जरूरतें मेरे बिना कहे ही जान लेते हो क्यों कि तुम्हारे प्रेम में आकर्षण है। जैसे मुझे पानी का ख्याल या और कोई ख्याल आते ही वह चीज मेरे सामने ले आते हो किन्तु रामचन्दर को तो जो चीज अर्थात् श्रेष्ठ दशा अदा करने के लिए जब भी जी चाहता है, तो उसकी ओर देखने से वह श्रेष्ठ दशा उसमें मौजूद ही मिलती है।' जब भी मैंने देना चाहा है हमेशा मैंने ऐसा ही पाया है। कहाँ मिलेगा ऐसा प्रेम का नमूना। कौन से प्रेम का यह प्रतीक है। उसका अर्थात रामचन्दर का प्रेम असीमित है।'

एक दिन बाबू जी शाहजहाँपुर में अपने घर में बाहर बरामदे में आराम से बैठे हुक्का पी रहे थे कि अचानक हुक्का रखकर बोले 'कि

मेरा काम तो सेन्ट्रल रीजन में पहुँचा देने पर पूरा हो जाता है। अब वहाँ रुकना तुम्हारा काम है।' 'दिव्य हो जाती थी ऐसे क्षणों में उनकी मुख-मुद्रा। पुनः बोले—'केन्द्र विन्दु हर जगह है। जैसे हृदय एक केन्द्र है उसका भी एक केन्द्र विन्दु है। इसी प्रकार माइन्ड रीजन और सेन्ट्रल रीजन का भी एक केन्द्र विन्दु है। यही विन्दु हमें सजगता देता है कि जब तक तुम बिन्दु अर्थात् जीरो नहीं हो जाते हो सिन्धु मे नहीं समा सकोगे।'' कदाचित् इसी कारण एक बार ''उन्होंने'' मुझे लिखा था कि ''हजारों समुद्र मारिफत अर्थात् ईश्वरीय ज्ञान के पी जाओ लेकिन मुख से यही निकले कि और लाओ और लाओ।'' एक अभ्यासी ने कहा—''बाबू जी मुझे जीरो कर दीजिए।'' श्री बाबू जी ने तुरन्त उत्तर दिया कि ''कर दूंगा, लेकिन तुम मेरा एक छोटा सा यह काम कर दो, कि तुम्हारा अहं बहुत बड़ा है इसे कम कर दो।'' हम तो उनकी वह मुख छवि देखते ही रह गये। अपने कार्य के प्रति जागरुकता का नमूना थे वे।

एक अभ्यासी ने पूछा कि ''बाबू जी, जब सबकी आत्मा एक है तो एक का उद्धार होने पर सबका उद्धार क्यों नहीं हो जाता है?'' श्री बाबू जी ने तुरन्त उत्तर दिया कि ''वैसे तो ऐसा हो ही जाता, परन्तु जिस वक्त हम यहाँ से चले तो सब एक जैसे ही थे। वास्तव में हमनें यहाँ आ कर हमने खुद को अलग-अलग कर लिया है पुनः सब वैसे ही हो जायें यही तो मेरा संकल्प है और ऐसी ही मेरी कोशिश है। मेरे कामयाब होने पर सब ही उद्धार पाये हुये की दशा में

यहाँ विचरण कर सकेंगे।" इससे यह प्रश्न उठता है कि आत्मा कहाँ से पृथक हुई और क्यों हुई ? उसका उत्तर यह है कि क्षोभ होने पर भूमा से जो शक्ति अलग हुई वह "ईश्वर" कहलाई। पुनः हिरण्यगर्भ अर्थात् जहाँ से रचनात्मक-शक्ति का वितरण हुआ या शक्ति क्रियान्वित हुई, वहाँ से ही रूप एवं आत्मा मानव को मिली। अब प्रश्न है यह क्यों हुआ ? क्योंकि रचनात्मक-शक्ति में एक से होने का भाव मौजूद था, इसी कारण यह कार्य स्वाभाविक रूप में स्वतः ही सम्पन्न हुआ। आत्मिक उन्नति के पथ में, जब हम पुनः वतन अर्थात् ओरिजनल-होम की ओर वापस लौटते हैं तब ही यह बातें सुस्पष्ट और सत्य मालूम होती हैं। श्री बाबू जी ने कहा था कि "मेरा हृदय खुली किताब है।" सत्य यही है कि "उनके" इस कथन का यथार्थ रूप में साक्षात्कार को दिव्य-दशा को प्राप्त कर लेने के बाद ही आ सकता है।

किसी के यह पूछने पर कि "बाबू जी" आपका रूप अब ध्यान में नहीं आता है, उन्होंने मास्टर साहब से कहा कि इन्हें रूप का ध्यान बताया किसने ? मैं रूप में समा ही नहीं सकता हूं इसलिए ऐसा हो जाता है।"

एक बार मास्टर ईश्वर सहाय जी ने कहा कि 'बाबू जी' कभी-कभी आप खुद पर काबू नहीं रख पाते हैं। आपने मना किया था कि अमुक के यहाँ नहीं जायेंगे लेकिन फिर उनके

बुलाने आने पर आप तुरन्त चले गये। तो बड़ी मासूमियतसे उनका मुख देखते हुये बोले कि "मास्टर साहब, क्या प्रेम के निमंत्रण में काबू के लिए जगह होती है ?

किसी ने मुझसे पूँछा कि अवतारों या दिव्य विभूतियों के विषय में शब्द "प्रगट होना" ही आता है, ऐसा क्यों है ? इसका उत्तर मुझे यही मिला कि जितनी शक्ति धरती पर दैविक कार्य के लिए जरुरी होती है उतनी ही अवतरित होती है और वह ईश्वरीय-शक्ति से संबधित है इसीलिए शब्द प्रकट होना स्वतः ही जुड़ जाता है, बोला नहीं जाता है। बाबू जी के बारे में भी यही हुआ। डिवाइन पर्सनैलिटी श्री लाला जी की प्रार्थना द्वारा प्रथम तो शक्ति वातावरण में अवतरित हुई फिर बाद में जितनी व जैसी शक्ति मानव शरीर सहन कर सके और शक्ति जिससे मानव मात्र आकर्षित हो सके उतनी एक रूप में सँवर कर धरती पर श्री बाबू जी के रूप में उतर आई।

एक बार स्वतः ही बोल उठे कि "शिष्य की गरिमा यही है कि अपने पीर के अंदाज को स्वतः ही अपने हृदय में ग्रहण कर ले और वैसा ही कार्य उनके द्वारा होने लगे।" पुनः बोले कि आध्यात्मिक डिसिप्लिन भी यही है कि खुद पर काबू का कमाल ऐसा हासिल हो जाये कि जैसे जब चाहे गुस्सा करें और जब चाहे न करे।"

अपने बच्चों के विवाह आदि के लिए भी आप इतने सचेत रहते थे कि किसी भी चीज की कमी न रह जाये। कहते थे कि "हमारी गरीबी के हिसाब से भी किसी चीज में कमी नहीं होना चाहिए। विशेष कर बरातियों के लिए, क्यों कि वे हमारे द्वार पर एक ही बार आयेंगे।" समधी का आदर देखने योग्य था। पता मिलने पर स्टेशन पर उन्हें लेने जाते लेकिन अचानक आ जाने पर देखते ही उठकर उनके स्वागत के लिए तेजी से द्वार तक जाते और गले मिल कर उन्हें अपने साथ लाकर अपनी कुर्सी पर बैठाते और खातिर करते थे।

एक बार बड़ी हंसी की बात हुई। अपने पुत्र का विवाह करके नव-वधू एवं पुत्र के साथ कार में आये। कार से उतर कर तुरन्त भीतर आये, बोले, बिटिया, जल्दी बाहर चलो। बिदा के समय पता नहीं बहू के यहाँ वालों के उसके अर्थात् बहू के सिर पर क्या रख दिया है कि अब तक उसका सिर दुख गया होगा।" मैं मेरी बहिन केसर तथा बाबू जी की छोटी पुत्री छाया कार के पास दौड़ कर गये। जा कर देखा तो बहू के सिर पर उसके बालों का ऊंचा जूड़ा बंधा हुआ था। हम- तीनों हीं श्री बाबू जी के मासूम, भोले मुख को देखते ही रह गये।

क्या कहा जाये उन अकर्ता के कार्यों के बारे में। ऐसा मैंने कई बार देखा है जून का महीना शुरू हो गया था, बड़ी

गर्मी थी। बाहरी आँगन में रोज की तरह ही शाम को कुर्सियाँ पड़ी थी। कुछ चारपाइयाँ भी बिछी थीं। मास्टर ईश्वर सहाय जी ने कहा कि— "इतनी गर्मी है लेकिन पानी बरसने के आसार ही नजर नहीं आते हैं। खेतों में भी पानी की बहुत जरूरत है।" बोले— "अच्छा?" ऐसा कहकर आसमान की ओर देखने लगे। हम सबकी निगाह भी ऊपर उठ गयी। अचानक आसमान में बिजली चमकने लगी। मास्टर साहब ने कहा कि—"बाबू जी यह देखिये काले बादल उठते आते हैं और बिजली भी चमक रही है।" आप अनजान की सी मुद्रा में उधर देखते हुए धीरे से बोले—"देखा हमारे लाला जी की मेहरबानी को।" हम सभी उनके इस कथन की झलक को उनके मुखारविन्दु पर प्रत्यक्ष ही देदीप्यमान पा रहे थे। अजब बात तो यह थी कि उनके ऐसे असाधारण कार्यों को देख कर भी चमत्कार शब्द उनके विषय में निरर्थक प्रतीत होता था, बस हमारे मुख से कृपा शब्द ही निकलता है।

श्री लाला जी साहब के एक डिक्टेट में है कि श्री बाबू जी महाराज का प्राकट्य जब धरा पर हुआ तो उनमें जो भी दिव्य-शक्तियाँ मौजूद थी, वे सब सुषुप्त अवस्था में थीं। इसी कारण समर्थ सदगुरु श्री लाला जी साहब ने श्री बाबू जी महाराज में खुद को लय अर्थात् मर्ज रखने की जरूरत समझी ताकि वे श्री बाबू जी के शारीरिक विकास के साथ ही समुचित रूप से दिव्य-शक्तियों को विकसित अवस्था में लाते जायें। उन्होंने आगे भी इसी

तथ्य को दोहराया कि यही हाल तब भी था जब श्री कृष्ण जी, स्वामी विवेकानन्द जी एवं अन्य महत् जनों ने अपने-अपने कार्यों के साथ एडीरेट के अनुसार शक्ति भी श्री बाबू जी महाराज को सौंपी थी। वे ही ऐसे समर्थ सदगुरू थे कि स्वयं को अपनी डिवाइन अवस्था से अलग रखकर इन शक्तियों को पहले स्वयं में सहेजते गये फिर क्रमशः शारीरिक शक्ति के सहन के अनुरूप ही श्री बाबू जी महाराज में ट्रांसफर करते गये। इससे यह पता लग गया कि श्री बाबू जी का यह कथन कितना सत्य था कि "मुझे तो जो मिला अपने लाला जी साहब से ही मिला है।"

इसी सन्दर्भ में एक प्रश्न उठता है कि हमें श्रेष्ठ आध्यात्मिक अवस्थायें प्रदान करने के साथ-साथ सैन्ट्रल रीजन के केन्द्र तक ले जाने में और रिसर्च के फल स्वरूप प्रत्येक स्थान के शक्ति के केन्द्र की शक्ति को भी देते हुये कैसे श्री बाबू जी अभ्यासी के शरीर को जीवित रखने का सहारा भी प्रदान करते हैं? उत्तर आज प्रत्यक्ष में मैंने यही पाया है कि एक स्थान से दूसरे स्थानपर ले जाने पर, पार किये हुये केन्द्र की दिव्य शक्तियाँ स्वतः ही मानों उनकी कृपा से सुषुप्त अवस्था में हो जाती थीं। इसी प्रकार भूमा की सीमा मेंप्रवेश देकर पुनः सेंट्रलरीजन में आगे चलकर जहाँ स्विमिंग की भी गम्य नहीं है वही पीछे की पाई हुई सारी शक्ति को सुसुप्त अवस्था बख्शते चलते हैं। इसका फल यह होता है कि जो भी ऊँचे स्तर के प्रश्न समक्ष में आते हैं

उनका उत्तर उसी श्रेष्ठ अवस्था की शक्ति स्वयं ही जागरुक हो कर बोल जातीहै लेखनी तो मात्र उसे लिखती भर जाती है। मुझे आज खुद यह आश्चर्य होता है कि वे कौन थ इस तथ्य का वर्णन करने का साहस मैं कसे कर सकती हूं। "वे तो बस वे ही थे। श्री बाबू जी के शब्दों में उनके लिये यही कहा जा सकता है कि जो है, सो है, किन्तु वर्णनातीत है। उनके वर्णन का यद्यपि उन्हीं की कृपा से दिव्यानुभूति सहित कलम में बाँधने की क्षमता उन्होंने ही प्रदान की हैं किन्तु जो अवतरण से ही अवर्णनातीत हो उसे भला लेखिनी क्या बाँध सकेगी ? हाँ मात्र चरण ही चूम सकती है और यह चुम्बन ही कुछ अनुभवगम्य तथ्य उनके विषय में लिखने के निमित्त बना करता जाये, यही, सहारा है एवं यही मेरे जीवन का अर्थ है।

मुझे पूर्णतया स्मरण है कि एक बार एक पुराने अभ्यासी की ओर अचानक मुड़ कर बोले कि "तुमने अपने अहं से हट कर सहज-जीवन में कितना प्रवेश पाया है, उससे नापों कि तुम मिशन में कबसे हो, वर्षों से मत नापा। पुनः बोले, सहज मार्ग में उन्नति का मतलब मिटना है पाना नहीं।" कभी-कभी तो ऐसे कथन के समय उनके मुखारविन्द पर एक ऐसा तेज व्याप्त हो जाता था जिससे मैं और शायद सभी लोग खुद को भूल जाया करते थे।

अक्सर उनकी दिव्य-मुख छवि के बदलते रूपों को देखकर

विस्मय से कुछ न समझ पाने की हालत हो जाती थी। एक बार अभ्यासी की ओर देख कर बड़ी जल्दी बोल उठे "संस्कारों को भूलो यदि इन्हें भूले नहीं तो भोगोगे ही। जब कोई तुम्हें इनके बंधन से छूट ने के लिए आया है तो फिर इनकी अर्थात् संस्कारों की बात भूल जाओ। "वास्तव में तब उनकी यह बातें सुनकर एवं उनकी मुख मुद्रा को निहारते रहने में आत्मिक आनन्द की गहराई में मानों खो जाती थी और आज मानों वे बातें अपना अर्थ स्वयं स्पष्ट करना चाहती हैं।

बिना पढ़े ही "वे कितने ज्ञानी थे इसका प्रमाण हम बार-बार पाते रहे हैं। एक बार एक अभ्यासी ने पूँछा कि "बाबू जी" संत कबीर के इस कथन का क्या अर्थ है कि "जाय लंगोटी झाड़ के बन्दा।' आप तुरन्त बोले, भाई अर्थ तो साफ है। जैसे आदमी के पूर्ण नग्न होने में मात्र लंगोटी ही बाधक होती है, वैसे आत्मा के नग्न होने में जीवात्मा का आवरण हट जाता है तो आत्मा, परमात्मा में समर्पित हो जाती है और आवरण रूपी वस्त्र उतार कर चल पड़ती है। परमात्म-देश की यात्रा पर।"

हम लोग लखीमपुर में रहते थे, वहीं के निवासी थे। मेरी छोटी बहिन केसर एम. ए. हिन्दी की प्राइवेट परीक्षा दे रही थी। प्राइवेट पढ़ने के कारण उसे कबीर के पद समझने में बहुत

कठिनाई होती थी। अचानक ही मास्टर साहब घर पर आये और बोले कि "कल श्री बाबू जी यहाँ आ रहे हैं।" बस फिर क्या था, हम सभी खुशी से उछल पड़े। उनके पधारने से पहले ही हम सब मास्टर साहब के घर नौरंगाबाद पहुँच गये। शाम के समय केसर भी कालेज में पढ़ कर सीधे मास्टर साहब के घर पहुँच गई। श्री बाबू जी भी नाश्ता करके आराम से बैठे हुक्का पी रहे थे। बोले—"केसर बिटिया, तुम्हारी परीक्षा कब से है ?" केसर ने बताया कि अमुक तारीख से है। फिर खुद ही बोले - कि "भाई, हम आलिमफाजिल तो नहीं हैं लेकिन अगर तुम्हें कुछ पूछना हो तो हम कुछ बता ही देंगे।" केसर को तो मनमाँगी मुराद मिल गई। तुरन्त पुस्तक निकाल कर कबीर व मीरा के कई पद पूँछ कर उनका अर्थ लिख डाला। तब समझाकर धीरे से बोले—उस्तानी जी (केसर को पूज्य बाबूजी उस्तानी जी ह कहते थे "अर्थ ठीक है ?" केसर ने कहा—कि "बाबू जी, मैंने कबीर व मीरा पढ़ी भी है और कक्षा में इन्हें पढ़ाया भी है लेकिन वह रटा हुआ ही था। आज आपने समझाया तो लग रहा है कि दिमाग में कहीं इसका अर्थ स्पष्ट हो गया है।"

हाँ याद आया उनकी अहेतुकी कृपा का वह समाँ। उन दिनों आप कचहरी में नौकरी में ही थे परन्तु अपने बच्चों अर्थात हम लोगों पर उनकी अहेतुकी कृपा की आदत के अनुरूप ही उनकी कृपा का खजाना मानों खुला पड़ा था। करीब-करीब हर शनिवार से पहले शुक्रवार को उनका पोस्टकार्ड मास्टर साहब अपने स्कूल से लौटते हुए

हमारे घर लेकर आते थे और यह खुशखबरी सुनाते कि कल श्री बाबू जी शाम को यहाँ आ रहे हैं। बस फिर क्या था, मास्टर साहब के घर जाने की हमारी तैयारियाँ शुरू हो जाती थीं।

एक बात जो अक्सर अब हमें सालती है अपनी नादानी की तो अब भी हम यह नहीं समझ पाते हैं कि तब हमें क्या हो गया था। अक्सर ही मास्टर साहब के स्कूल चले जाने के बाद हमारे श्री बाबू जी पैदल ही चलकर हमारे घर आ जाते थे। पहले पहल तो उनके हमारे घर पधारने का हमें गुमान तक न था कि वे परम प्रिय हमारे घर के द्वार पर आ खड़े होंगे जब द्वार खटखटाया तो मैंने पूछा कौन है? आवाज आई मैं रामचन्द्र हूं।" भौचक हो कर हम सभी यह कहते हुये दौड़ पड़े कि अरे बाबू जी आये हैं। अब जब कभी इस बारे में सोचती हूं तो खुद को ही भूल कर विस्मृत अवस्था में खोई बैठी रहती हूं कि ऐसी दिव्य विभूति दरवाजे पर खड़ी दस्तक दे रही होती थी। वे कहते थे हम तुम्हें लेने आये हैं जल्दी तैयार हो जाओ। वे तो हर पल हमें चेताना देते थे कि मैं यह हूं किन्तु हम? घर में लाकर भी यह नहीं पूछ पाते थे कि "बाबू जी पानी लेंगे? या गर्मी में पंखा ही झल देते उन पर। इतनी दूरी से पैदल आते थे, न कोई फोटो खींचता था, न कोई बैठने को आसन देता था और न यही ख्याल आता था कि उनकी मधुर ध्वनि को किसी कैसेट में बन्द कर लें। बस एक ही धुन रहती थी हम

सबको कि जल्दी चलें। शायद इसीलिए कि वे चाहते थे कि हम जल्दी चलें उनकी वही दिव्य आवाज कहीं मेरे अन्तर को छू कर क्रमशः समा गई थी और मेरी शीघ्र आध्यात्मिक उन्नति का कारण एवं शक्ति का श्रोत, बन गई थी। आज भी उस समय की हालत जब याद आ जाती है तो लगता है कि मैं बेसुध थी और कहाँ जाने की तैयारी में थी, यह कुछ भी याद नहीं है। इतना ही नहीं हम सब उनके साथ ही चल पड़ते थे किन्तु उनके चरणों की गति को भी हम में से कभी कोई पकड़ नहीं पाता था। परम माधुर्य में पगी वह छवि अपनी छड़ी से कमर को सहारा दे कर जब खड़े हो कर हमारे आने की बाट जोहते तब कैसा समाँ होता था। सच कहती हूं कि ऐसे ही परमानन्द के दैविक आकर्षण के साथ मेरे मालिक मुझे अपने देश तक ले आये। लेकिन वह दिव्यानन्द, उनके पीछे उनके चरण चिन्हों पर मेरे पैर न पड़ जायें, इसे बचाते हुये दौड़ना, पुनः पुनः उनका मुख निहारना यह संस्मरण मात्र नहीं है किन्तु क्या है, मैं नहीं जानती हूं। इसे जानेगा भी कौन, क्योंकि इनमें जानने योग्य कुछ भी नहीं है, बस मालिक से प्रार्थना है कि उस समाँ का सबको अनुभव करायें। छड़ी को पीठ का सहारा दिये हमारी ओर मुख किये हुए हमारा अपने पास पहुँचने की बाट जोहना इस मोहक नजारे पर हजारों नजारे आध्यात्मिक गतियों के आनन्द भी न्योछावर हो जायेंगे। किन्तु यह तो नजारे भी न बोल पायेंगे कि उन्हें क्या मिला होगा। बस अक्सर यह नजारा याद आते ही सूरदास के एक पद में भीष्मपितामह की ओर

बढ़ते भगवान कृष्ण ं उस नजारे का ख्याल आ जाता है कि —

"कर धर चक्र चरण की धावन, नहिं बिसरत वह बान।"

वह समा मानों आज भी प्रत्यक्ष हो उठी हैं समक्ष में और लेखिनी मानों उनके कदमों में ही झुक जाती है और चलना ही भूल जाती है मानो यह कहते हुये कि अब पुनः जब सुधि आयेगी तब आगे लिखूंगी, आँखों देखा हाल।

एक दिन बड़े आराम की मुद्रा में जाड़े के दिनों में घर के बाहर, टीन के शेड में धूप में बैठे थे। अचानक एक अभ्यासी ने प्रश्न कर दिया कि बाबू जी क्या जिल्लत, किल्लत एवं खिल्लह झेलना सत्पुरुषों के लिए जरूरी है ? प्रथम तो आप मुस्कुराये फिर बोले,. भाई वाह इस आराम के माहौल में आप क्या किल्लत ले बैठे।" पुनः बोले, "काँटों की राह गुरु चलता है किसलिए ? ताकि तुम्हारे रास्ते में जो शूल आयें वे उन्हें चुन कर फेंक दें जिससे वे शूल अभ्यासी के न चुभें।"

एक बार श्री कृष्ण और अर्जुन की चर्चा चलने पर श्री बाबू जी बोल उठे कि अर्जुन की सी हालत वाले तो मेरे मिशन में अनेकों हैं किन्तु कठिनाई यह है कि अर्जुन की भाँति समर्पण, किसी में नहीं है और यह पैदा करना खुद अभ्यासी का कर्त्तव्य है।" भला अभ्यासियों के प्रति उनके बन - बोलते परिश्रम के

विषय में क्या कहा जा सकता है। उनकी एक मुस्कुराहट बता देती थी कि वह भी व्यर्थ नहीं है बल्कि वातावरण में छाये दुःखों एवं दुविधाओं को स्वयं की छाया में दबाकर लोगों के मन में स्वतः ही मुस्कुराहट के क्षणों को जोड़ देती है। क्यों ? क्योंकि वे प्राणीमात्र के लिए पृथ्वी पर पधारे थे।

एक बार पब्लिक मीटिंग (सहज मार्ग से सम्बन्धित) से लौटकर आपने कहा कि "हमें चाहिए कि मीटिंग का सभापतित्व करने के लिए हमें अपने लोगों में से ही चुनाव करना चाहिए जो हमारी पद्धति एवं सहज मार्ग के बारे में जानते हों। सहज मार्ग के बिषय में जानकारी न रखने के कारण बोलते समय वह हमारी पद्धति, प्रशिक्षण एवं सहज मार्ग की बिशेषताओं को समाप्त कर देते हैं" यह सत्य था क्योंकि यह तथ्य कई बार हमारे समक्ष आ चुका था।

आप खिले हुए पुष्पों को देखते रहने और मानों हरियाली को देखते हुए अपने देश की छटा निहारने में अत्यन्त विभोर हो जाते थे। उनके वे नेत्र द्वय आज भी वह मनमोहन-छवि अन्दर से कहीं मुझे झकझोर डालती है और अभ्यासियों की लक्ष्य के प्रति सुषुप्ति को ललकारती थी और निमन्त्रित करती थी अपने समीप आने को।

कभी-कभी हरियाली या फूलों को देखने में खुद को इतना उलझा हुआ दिखाते थे कि साधारण आदमी बेचारा धोखा खा जाये।

फिर भी सजग ऐसे कि एक अभ्यासी, उन्हें पेड़-पौधे देखने में उलझा देख कर जब उसका जी ऊबने लगा तो वह उठ कर स्वयं ही श्री बाबू जी के पास चले गये और पूछा कि बाबू जी मंजिग कब होता है ?" आपने झट से उत्तर दिया कि जब जरूरत होती है या जब बन्दा मर जाये और जिन्दगी को बका अता करने के लिए मालिक खुद मजबूर हो जाये।" बहुधा पढ़े-लिखे लोग लय-अवस्था व मंजिग को एक ही समझ बैठते हैं जबकि दोनों में एक लय अवस्था है जो अभ्यासी के डिवोशन पर निर्भर करता है और दूसरी मालिक के कृपा पर ही आश्रित होती है।

प्रिय पाठक भाइयों ! बाबू जी महाराज के बारे में भला कितना और क्या लिखा जा सकता है। मेरे तो विचार में भी कभी यह न था कि यह लेखनी कभी उनके विषय मे भी कुछ लिख पाने का साहस कर पायेगी। लेकिन जब उन्होंने स्वयं अपना साक्षात्कार प्रदान किया और साक्षात्कार भी जब प्रत्यक्ष हो उठा तब मात्र उनके ही करम से यह लेखनी खुद उन्होने अपने ही हस्त कमल का सहारा देकर पुनः चला दी और तभी यह लेखनी बोल सकी उनके ही बोल।

कभी - कभी मेरी ही लेखनी जब मुझसे पूछती है कि किसके बारे में यह लिख रही हो तो उत्तर यही मिलता है कि उस इग्नोरेन्ट पर्सनेलिटी के बारे में जिसके चरण आज यह धरती

चूम रही है। इनकी हँसी की बात का एक और नमूना देखिये। शाहजहाँपुर में हम सभी बाहर प्राँगण में बैठे हुये थे तो चार गधे आहाते में घुस आये। श्री बाबू जी ने झट से मास्टर साहब की ओर देख कर कहा कि "मास्टर साहब, चार चार बुद्धिमान आये और तुमने इनकी कुछ खातिर तक नहीं की।" मास्टर साहब हमेशा किसी न किसी काम में व्यस्त रहते थे सो मुँह उठा कर बोले कि "बाबू जी, ये तो गधे हैं।" अरे भाई सबसे अधिक बुद्धिमान तो यही है।" कह कर वे मुस्कुराये। मास्टर साहब भी मुस्कराते हुये बोले "फिर इसका नाम गधा क्यों पड़ा।" आप तुरंत बोले, "ताकि इन्हें नजर न लग जाये" पुन: गंभीर हो कर बोले, "ये दूसरों का बोझा एवं गंदगी ढो कर खुश होते हैं जिसे जमाना बेवकूफी समझता है। संत की गति भी तो यही एहसास बोलती है लेकिन वाणी किसी की कुछ नहीं बोलती है।"

एक बार हम सभी लोग बाहर बरामदे में बैठे हुये थे। चाय चल रही थी। श्री बाबू जी भी उस दिन गुड़ की चाय पीने में शामिल थे। एक भाई ने पूछा कि "बाबू जी मेरी समझ में यह बात नहीं आयी कि कल इन साहब के लड़के को तेज बुखार था, इन्होंने आपको याद किया तो बुखार बहुत कम हो गया। आज मेरे पुत्र को तेज बुखार था तो मैंने आपको बहुत याद किया, बार-बार याद किया, लेकिन बुखार तिल भर भी कम नहीं हुआ।" आप धीमें से बोले, भाई, इन्होंने तो मुझे याद

किया था और तुमने एक डाक्टर को याद किया था।'' अब देखें कितना भारी अंतर है उनकी बात में। जो तब अच्छा लगा था सुनने से और आज जब अर्थ स्पष्ट हो गया है तब वास्तव में उनका यह कथन कितना यथार्थ प्रतीत होता है कि उनकी हर बात का कुछ न कुछ अर्थ होता है।

ऐसे ही संदर्भ में एक दिन किसी अभ्यासी ने पूंछ लिया कि ''आप किसी की बात से तो बड़े खुश हो जाते हैं और कोई उससे भी अधिक अच्छी बात कहता है तो भी आपको मजा नहीं आता है?'' उनका पावन उत्तर उनकी दिव्य वाणी द्वारा सुनने को हमारी तरह से आप सब भी बहुत उत्सुक होंगे ही तो सुनिये। आपने कहा कि तर्जे गुफ्तगू के दो तरीके होते है। एक में व्यक्ति खुद को भूल कर आत्म निवेदन की दशा में डूब हुये बोलता है और दूसरे में उनकी खुद में ही बोलती है।'' हम तो ऐसे बेसुध हो गये थे उस मधुर वाणी को सुनकर कि जब हुक्का गुड़गुड़ाने की आवाज आई तब मुंह उठा कर देखा तो नजर उस महाशक्ति की ओर देख कर स्वतः ही झुक गई।

सैलाब अर्थात् बाढ़ का दृश्य तो सभी ने देखा होगा लेकिन उस दयामय की दया का सैलाब और प्यार भरी उन निगाहों का सैलाब कदाचित ही कोई देख सका हो। एक बार उन दयामय के हृदय में हमें कुछ प्रदान करने का सैलाब उठ खड़ा हुआ था क्योंकि सौभाग्य हमारा था कि उस समय पिता

जी के साथ हम सब शाहजहाँपुर पहुँच गये थे। इत्तिफाक से शाम को हमने आबतावे-मारिफत गीत गाया। फिर क्या कहना था, समर्थ सद्गुरु श्री लाला जी साहब की प्रशंसा में लिखा हुआ यह गीत है। पिता जी से इसका अर्थ समझ कर बंदिश में बाँध कर जब इसे गाया तो मैं कह नहीं सकती कि मैं तथा जिसने भी यह गीत गाया सुना था, सब ही मानों सुध-बुध खोये से बह गये थे उन दयामय के दया के सैलाब में उस समय मुझे ऐसा भी लगा था कि वे खुद भी जो खिंच कर आये थे दिव्य-देश से, उस गीत को सुनते समय फिर वापस लौटने का होश खो बैठे थे। 'हमने क्या पाया' भला इसकी तमीज किसको थी। इतना ही नहीं पं. रामेश्वर प्रसाद जी श्री बाबू जी के गुरुभाई आँखों से नीर बहाते हुए मानों यही चाह रहे थे कि आज अपने पास कुछ न रक्खें, सब दे डालें। परन्तु श्री बाबू जी ने तुरन्त ही कहा, खुद को सँभालो रामेसुर।'' किन्तु उस सैलाब में बह जाने का परिणाम यही हुआ कि मैं फिर कभी वापस न लौट सकी। क्योंकि उनके पीर अर्थात् लाला जी साहब की प्रशंसा में गाये गीत ने उनमें अर्थात् बाबू जी साहब व रामेश्वर प्रसाद जी के हृदय में अपने पीर की याद को पुन: उभार दिया था।

इसी सन्दर्भ में एकबार ऐसा नजारा पुन: देखने को और मिला था। मेरे भाई तुलसीदास अर्थात् बड़े भइया तब बारह वर्ष के थे उन्होंने एक दिन ध्यान से उठकर एक गीत लिख डाला जो श्री बाबू जी महाराज की तारीफ में मात्र संकेत भर ही था। गीत के बोल हैं 'घिर

रही सजल थी घोर रजनि।' उन्हीं दिनों बड़ी कठिनाई से श्री बाबू जी ने मेरी अम्मा को घर पर ही ३० अप्रैल अर्थात् श्री बाबू जी का जन्म दिवस मनाने की आज्ञा दी थी। वह भी सख्त शर्तों के साथ। प्रथम प्रसाद में मात्र पाँच रुपये ही खर्च किये जायेंगे। दूसरा खाना सब एक साथ ही खाय परन्तु सादगी का नमूना हो।'' उत्सव में इन शर्तों का अक्षरशः पालन किया जाता था हम लोग जुट कर अपने हाथों से रंग बिरंगे कागज की झंडियाँ बनाते और अपने घर के उस हाल को सजाते जिसमें कम से कम सत्तर आदमी बैठ सकते थे। उस समय उत्सव में आदरणीय मास्टर साहब, भाई मुरलीधर जी एवं भाई पुत्ती बाबू वकाल का परिवार मिल कर हम नौ-दस, अभ्यासी थे और नौ-दस बच्चे भी थे। उस उत्सव में बड़े भइया ने उपर्युक्त गीत सुनाया मालिक की कृपा से बड़े भइया की आवाज गंभीर एवं मधुर है व राग भी स्थिर है सो गूंज उठा था वह पावन गीत और झूम उठे थे हम सब साथ ही फैल गयी थी ईश्वरीय धार की वह धारा जिसे ट्रांसमिशन कहते हैं। फिर क्या था दिन में चार बार, पाँच बार कितनी ही बार गाओ जी ही नहीं भरता था। एक सप्ताह बाद हम सबका प्रोग्राम शाहजहाँपुर जाने का बन गया। बस जी में यही था कि कैसे भी शाहजहाँपुर पहुँचें और बड़े भइया के साथ हम सब मिलकर वह गीत बाबू जी को सुनायें। सफर का समय काटे नहीं कट रहा था। आखिर आ ही गया शाहजहाँपुर। बाबू जी के घर जाने के रास्ते में उनकी कचहरी पड़ती थी सो बहुधा मास्टर साहब ताँगा रुकवाकर वहाँ से

को बाबू जी को साथ ही ले लेते थे हम लोग भी तांगे में उनके लिए थोड़ी जगह बना लेते थे और वे उस थोड़ी सी ही जगह में बैठ जाते थे। मास्टर साहब से बातें करते हम सब घर पहुँच जाते थे लेकिन वे कितनी थोड़ी सी जगह में बैठे हुये हैं यही स्मरण रहता था। घर आ जाता था तब छोटे बड़े सब मिलाकर बारह लोग तांगे से उतरते थे। आप भी सबके साथ सामान उठाकर घर के भीतर हमारे कमरे तक ले जाते थे। बरामदे में पहुँचकर कहते "देखो बिटिया, तुम्हारा कमरा सवेरे ही साफ करा दिया था।" कमरे में जमीन पर एक फटी सी दरी बिछी हुई थी, कोने में एक पतली चारपाई भी पड़ी थी। अपना सूती कोट व अलीगढ़ कट चूड़ीदार पायजामा बदल कर वहीं खूंटी से टांग देते थे। छड़ी को भी खूंटी पर टांग कर वे कमरे से बाहर चले जाते थे। बाहर नल पर हाथ मुँह धो कर बरामदे में कुर्सी पर बैठ जाते थे। कालीन का एक कटा हुआ छोटा सा टुकड़ा उनकी कुर्सी पर बिछा हुआ था। मालिन हुक्का दे गई थी। हुक्का पीने के बाद वे भीतर गये और नास्ता करके वे बाहर आ गये थे। हम भी चाय पी कर बाहर पड़ी कुर्सियों पर उनके इर्द-गिर्द बैठ गये थे। बातें होने लगीं मास्टर साहब ने उन्हें बताया कि तुलसीदास ने एक गीत लिखा है। एकदम से बोल पड़े कि "हमारे लाला जी साहब को गाना बहुत पसंद था। वे खुद भी बहुत बढ़िया गाते थे और आवाज तो इतनी बुलंद एवं प्रभावशाली थी कि जब वे गाना गाते थे तो मानों वातावरण भी

स्तब्ध हो जाता था।" फिर बोले—"लाला जी बुला रहे हैं, गीत सुनना चाहते हैं।" भीतर से हारमोनियम मँगवा लिया गया और हम सब बाबू जी के साथ पूजा के कमरे में चले गये। गीत शुरू हो गया।" घिर रही सजल थी घोर रजनि" यह गीत उन्हीं की प्रशंसा में लिखा गया है यह सुन कर चुप हो गये। गीत पूरा होने के साथ ही बोले— लाला जी साहब बेहद खुश हैं, एकबार फिर गाओ" हम सब तो मगन थे ही, फिर गाने लगे। जब गाना समाप्त हो गया तब देखा कि श्री बाबू जी के मुखमण्डल पर ऐसा तेज छाया हुआ था कि दृष्टि नहीं टिकती थी। बोले—मास्टर साहब, लाला जी साहब कहते हैं कि तुलसीदास को वह इनाम दो जो कभी किसी को न मिला हो। हम सोच रहे हैं कि क्या इनाम दें?" पुन: झट से बोल उठे- "हुजूर भी क्या कहेंगे वह इनाम देंगे जिसे दुनिया याद रक्खेगी।" बोले—"तुलसीदास जरा आँख बन्द करके ध्यान में बैठ जाओ। वह बैठ गया। दस-दस मिनट पर स्वयं भी आँखें खोलते और भइया की भी आँखें खुलवाते। इस प्रकार लगभग चालीस मिनट व्यतीत हो गये, फिर बोले—"बस करो। तुलसीदास, तुम जाकर खेलो या आराम करो अब छ: महीने तक पूजा में न बैठना।" इन चालीस मिनटों के मध्य कमरे में बैठी मैं भी ऐसी मन: स्थिति में रही कि कुछ पता ही न चला। जब बस करो की मधुर ध्वनि कान में पड़ी तो मानों कहीं से वापस लौटी थी। खुद भी वे बाहर आकर बैठ गये। पीछे-पीछे हम लोग भी पूजा के

कमरे से बाहर आकर कुर्सियों पर बैठ गये। कुछ देर हुक्का पीकर बोले—"चौबे जी और अम्मा मैं तुम्हें मुबारकबाद देता हूं।" पुनः मास्टर साहब व पापा जो बहुधा ऐसे अवसर पर आ ही जाते थे, की ओर मुख करके बोले—जानते हो रामेसुर, हुजूर ने तुलसीदास को क्या बख्श दिया है? तुम म. तो उन्नति करते हुये सेंटर रीजन पर पहुँचोगे पर तुलसीदास की सैर सेंटर रीजन से आरम्भ होकर क्रमशः नीचे की यात्रा को पूरा करेगी।" फिर बोले—हमारे हुजूर की शान तो देखो, मिला है अब तक किसी को ऐसा वरदान? हुजूर की एक निगाह जिस पर पड़ जाये वह क्या से क्या हो जाता है।" पापा की आँखों से अश्रु की झड़ी लगी थी और हम सब, मोह से दूर और प्रेम के प्रतीक उन दिव्य विभूति की ओर अपलक दृष्टि से निहार रहे थे। सच ही तो वे बोल रहे थे आदि शक्ति के भी मास्टर श्री बाबू जी महाराज। फल स्वरूप बड़े भइया में तो बैलेंस आफ माइन्ड की सीमा नहीं है। एकबार—बोले "तुलसीदास चाहे पूजा न करें परन्तु उसका पूरा माइन्ड दिव्य प्रकाश से प्रकाशित है।" ऐसा लगता था कि उनके रूप में अल्टीमेट की शक्ति का सैलाब ही आया था जिससे विश्व का कण-कण भींग उठा है और यह भींगापन ही रंग लायेगा, दिव्यता का वह रंग, जिससे यह धरा खिल उठेगी और गगन का मस्तक भी झुका रहेगा उन दिव्य चरणों में स्वयं के शून्यपन को शून्य-अवस्था में बदल देने के लिए, और तब वह भी कुछ बोल सकेगा 'कि कौन थे वे।'

अचानक एक दिन जब मैं अकेली ही मास्टर ईश्वर सहाय के साथ शाहजहाँपुर आई थी, पता नहीं किस मौज में उनकी कृपा का सैलाब था और उस दिन वे क्या दिखाना चाहते थे हम सबको। दूसरे दिन प्रातः मैं व मास्टर साहब उनके सामने बैठे हुए थे। अचानक वे हुक्का पीना छोड़कर चुप हो गये। तभी मैंने देखा कि कुर्सी पर तो कोई नहीं है और बाबू जी समस्त में व्याप्त हो गये है और, उनकी ही शक्ति से सृष्टि क्रियान्वित है। प्रकृति उस दृश्य को देखकर मानों स्तब्ध हो गई थी। कितनी देर ऐसे गुजर गई थी मुझे नहीं मालूम। एक दम होश आने पर यह दशा अनुभूति में भर गई थी कि मेरे शरीर को जीने के लिए अब मानों श्वाँस का स्थान भी बदल चुका था। यह सारा दृश्य जब अपने एहसास को पूर्णतया मुझमें "मानों स्पन्दन हुआ और तभी एकाएक मधुर-ध्वनि कानों में पड़ी, बिटिया हमारे लाला जी साहब को कोई नहीं जानता कि वे क्या थे।" मुझ पर ऐसी मोहिनी छा गई थी कि मैं समझ ही न सकी कि यह कौन शक्ति, किसके बारे में और क्या बोल रही है? पुनः हुक्का गुड़गुड़ाने की ध्वनि आने लगी थी और वातावरण ऐसा शान्त था कि मानों कुछ हुआ ही न था। मैं क्या बताऊँ कि वह दिन ही मेरे खुद के बोलने का अन्तिम दिन था। वह क्षण मुझे अनुभूति में इस तरह से पाग गया था कि मानों अनुभूति का अनुभूति से रिश्ता हो गया था और मैं उससे भी परे हो गई थी किन्तु उन्हें अर्थात् अनुभूतियों को अपना कहकर संबोधित कर पाने की मानों मुझे अनुभूति थी और वह भी इस प्रकार से कि मानों मैं अपने बारे में

नहीं बोल रही हूं बल्कि कहीं का दृश्य देखकर लिख रही थी और वे मानों मात्र यह जता भर रहे थे कि इस दृश्य को मानव मात्र के लिए जीवन में सुलभ कर देनेवाले कौन थे वे ! यह दृश्य भी क्या था मानों उनके साक्षात्कार का एक अंश मात्र था यह मैं समझ गई थी क्योंकि उन्होंने ही मुझे समझा भी दिया था यह कह कर कि, "अभी देखा ही क्या है, हिम्मत है तो और बहुत कुछ भी देखोगी।"

एक बात कैसी प्यारी थी उनमें से किसी को जब कुछ सिखाना चाहते थे तो खुद करके ही सिखाते थे। साधारण सी बात थी—दक्षिण भारत के कुछ अभ्यासी आये हुये थे। श्री बाबू जी को लैटरिन मे पानी के प्रयोग करने के लिए रक्खे लोटे के पानी से हाथ धोना पसन्द नही था—सो जब दक्षिण भारत के अभ्यासी आते थे तो उनके लैटरिन से बाहर आते ही श्री बाबू जी स्वयं दूसरे लोटे में पानी व एक हाथ मे मिट्टी लेकर नल के पास खड़े रहते थे, खुद ही एक हाथ से उनके हाथ में मिट्टी देते थे और पानी से हाथ धुलवाते थे। दिन में उन्हें ऐसा कई बार करना पड़ता था। कुछ दिनों में ही दक्षिण से आनेवाले अभ्यासी भाइयों ने एक दूसरे से यह काम सीख लिया था। इस प्रकार अंतर की सफाई के साथ वे बाहरी सफाई रखने के भी कायल थे।

जब अभ्यासी भाई कहीं से आते थे तो उनके खाने के विषय में घर के भीतर स्वयं ही जाकर बड़ी बहू अर्थात् प्रकाश दद्दा की पत्नी को

बतला आते थे। कहाँ से आये हैं, कैसा खाना खाते हैं, यह सब उन्हें याद रहता था। कहते "भाई ये हमारे पाहुने हैं इन्हें किसी प्रकार का कष्ट न हो।' विदेश से आये अभ्यासी भाई-बहनों को डबल रोटी व मक्खन खाने को देना नहीं भूलते थे। जब पहली बार विदेश से कुछ भाई-बहिन आये तो बढ़ई को बुलाकर एक मेज ठीक करवाकर खाने के कमरे में डलबाई क्योंकि घर में कोई बड़ी मेज थी नहीं और कुर्सियाँ बाहर बैठने के लिए चली जाती थीं। मास्टर साहब से बोले—'मास्टर साहब, हमारी कुर्सियों पर गद्दी तो है नहीं, विदेशियों के बैठने पर उन्हें चुभेगी।' इसके बाद अपनी व लड़कियों की फटी धोतियाँ लाकर बोले—'मास्टर साहब, इनकी गद्दियाँ सिल दो और इनमें फटे हुये कपड़े भरवा देना क्योंकि इस वक्त रुई के लिए पैसे नहीं हैं। गद्दियाँ कुछ गुदगुदी तो हो जायेंगी।' आज भी जब वह सारा दृश्य नेत्रों के सामने घूम जाता है तो लगता है कि प्यार का सागर मानों मानव रूप मे हमारे समक्ष खड़ा हुआ है और लेखनी मानों मुझसे कहने लगती है कि मुझे रख दो, अब आगे न लिख सकूँगी। 'कौन थे वे' क्या कहूँ मैं।

बहुधा ऐसे ही प्रकरण आ जाते थे जो अनहोनी को होनी बना देते थे। उस पर भी जिह्वा कुछ कह पाने में असमर्थ होती थी। लेखिनी उसे कैसे क्रमबद्ध करके लिखे ऐसा सोचकर चल पाने का साहस नहीं जुटा पाती है। आँखें सब कुछ देखते हुए भी तब मानों

कुछ नहीं देख सकीं थी। हाँ दशा में स्थिर रहकर अन्तंदृष्टि भेद जाती थी अन्तर्मन को और आज वही मानों अतंम पटल पर लिखे सारे भेदों को स्पष्ट कर देने के लिए कटिबद्ध हो गई है। लखीमपुर में भाई का विवाह था, कोठी के द्वार पर अचानक खटक हुई जब द्वार खोलने गई तो देखकर दंग रह गई कि समक्ष में हमारे परम जीवन सर्वस्व श्री बाबूजी खड़े थे। बोले—'हम बारात में जाने के लिए आये हैं।' अम्मा ने कहा 'बाबूजी, आप बारात बारात न किया करें। खान-पान आराम सभी कुछ गड़-बड़ हो जाता है।' लेकिन न जाने क्यों उनकी आवाज की इतनी दृढ़ता कि हम तो बारात जायेंगे' के समक्ष हम सभी चुप हो गये। दूसरे दिन आप बारात में इलाहाबाद गये। वहाँ आप व मास्टर साहब जज साहब अर्थात् मेरे बड़े चाचा जी के यहाँ ठहरे। यहाँ पर समय-समय पर अभ्यासी भाई-बहिन भी पूजा में आया जाया करते थे। जज साहब की एक लड़की की बीमारी गंभीर थी। तब रीति के अनुसार बारात तीन दिनों तक ठहरती थी। दूसरे दिन लड़की की हालत बहुत सीरियस हो गई। इधर न जाने क्यों, लखीमपुर में घर में मुझे बार-बार ऐसा लगता रहा कि 'श्री बाबू जी अपनी आयु का कुछ अंश उस लड़की को ट्रांसफर करना चाह रहे हैं। मैं क्या करती, बार-बार लाला जी साहब से प्रार्थना करती और इच्छा शक्ति से उन्हें ऐसा करने से रोकने की नाकाम नादानी करती रही। मैं तो हारी थी ही। मैंने अम्मा व एक दो अभ्यासियों से इसकी चर्चा भी की किन्तु जी को चैन न मिला। तीसरे दिन जब बारात वापस लौटी और हम

श्री बाबू जी से मिले तब मैंने अश्रुभरी आँखों से पूछा।—'मालिक आपने ऐसा क्यों किया ? क्या आप इसीलिए बारात में जाने की ठान कर आये थे।' जानते हैं वे क्या बोले ? बड़ी धीमी आवाज में कहने लगे, जज साहब इतने परेशान थे कि मैं देख न सका। फिर बोले—'उस समय कोई होम्योपैथिक दवा भी काम कर गई थी।' परिणाम स्वरूप आज भी जब उस बहिन को कोई देखता है तो अनजाने ही उसके चेहरे पर की एक दिव्य-चमक, वाणी एवं संकल्प की दृढ़ता से यह परखा जा सकता है कि साधारण अभ्यासियों से वे कहीं दृढ़ हैं। भला क्या है, हम मानवों के पास इसके एवज में अर्पण करने के लिये ? बहुत चाहा कि यह चीज हमें सिखा दें तो यही उत्तर देते कि 'यह कोई विद्या नहीं है जो मैं सिखा दूं और अब तो लाला जी साहब ने मुझसे यह वचन ले लिया है कि ऐसी बात दुबारा दोहराई नहीं जानी चाहिये।'

क्या कहूं सरलता ऐसी देखी उनमें कि बालक भी मात हो जाये या यों कहें कि सरलता का यथार्थ स्वरूप उनके रूप में स्पष्ट हो गया था। सरलता गुण तो कभी-कभी किसी में देखने को मिल ही जाता है किन्तु सरलता भी जिनके चरणों को चूमकर उनमें ही लय हो गई हो और सरलता के रूप में उनके व्यवहार में झलक उठी हो तो भला हम उसे क्या कहेंगे। सच तो यह है कि हम कहेंगे कुछ नहीं केवल जो समक्ष में था उसे देखते

ही रह जाते थे। कभी कोई छोटी सी दूकान का उद्‌घाटन करने के लिए कहता, कभी कोई बच्चे के मुंडन जैसी छोटी बातों के लिए भी निमंत्रण देने आता तो अपना सूती और बिना प्रेस किया हुआ कोट पहन कर, कभी धोती या अलीगढ़कट पाजामा पहन कर तुरंत ही तैयार हो जाते थे। एक बार मास्टर ईश्वर सहाय जी ने हँसते हुये पूँछा "हुजूर, इन छोटे मोटे कामों के लिए आप क्यों तैयार हो जाते हैं ?" तो बोले, "भाई, लोग हमें लालचवश इसलिए बुलाते हैं कि हमारे आशीर्वाद से काम हमेशा बनता रहे। हम भी ग्यारह या इक्कीस रूपये आशीर्वाद में दे कर चले आते हैं, हाँ हमारी जेब जरूर खाली हो जाती है।" लोग उनके दिये हुये रूपयों को बाबू जी का आशीर्वाद है कह कर रख लेते थे। "परन्तु इस बात का ध्यान कोई नहीं देता था कि इस प्रकार पैसा खर्च हो जाने के कारण तीन-चार दिनों के लिए श्री बाबू जी महाराज का दूध पीना भी बन्द हो जाता था। इतना ही नहीं कचहरी दूर होने पर भी काफी दूर पैदल ही चलकर उन्हें पैसे बचाने पड़ते थे" कालान्तर में उनके ही कार्य का कमाल अवश्य प्रकाश में आने लगा जब अभ्यासियों की मेन्टेलिटी बिल्कुल बदलने लगी और उन्हें यह एहसास होने लगा था कि हमें इनके खर्च व आराम का भी ख्याल रखना चाहिये। पर मालिक के सामने अभ्यासियों के इस सूक्ष्म चिंतन को पनपने का भी अवसर कैसे मिलता। एक बार जब आपको कार पर बैठा कर अभ्यासी ले गये तो बोले, इतना पैट्रोल खर्च करने की क्या जरूरत थी। पैसा तुम्हारी जेब से गया या मेरी जेब से गया, बात

तो एक ही रही।" अभ्यासियों के प्रति ऐसी अपनायत भला किसके हृदय को स्पर्श नहीं कर लेती परन्तु कभी-कभी इसके विपरीत किन्हीं के लिए यह मतिभ्रम भी बन जाया करती थी इसलिए उनका कथन था कि "हमें खुद की मैन्टेलिटी को हमेशा संवारते जाना चाहिए क्योंकि मनुष्य की मैन्टेलिटी तो उसके व्यक्तित्व की परिचायक होती है।" जब लयअवस्था बढ़ते-बढ़ते मैन्टेलिटी भी लय हो जाती है तब हमारा अपना पृथक व्यक्तित्व भी मालिक में ही विलीन हो जाता है। तब रह जाता है मात्र आइडिया जिसे खुराक मिलती है मालिक में लयअवस्था हो जाने के कारण दिव्य शक्ति की, जो आवाहन होती है सृजनहार का एक अंश हो जाने की और खुदी के ज्ञान को भी भूल जाने की। और जब इस दिव्य आवाहन का अभ्यासी स्वयं में स्वागत कर लेता है अपना लेता है तभी आगाज होता है मालिक के आविर्भाव को सदैव अपने में ही मौजूद पाने का। और तब मानव जीवन धन्य हो जाता है और बिखर जाता है उन विराट चरणों में जो वातावरण की श्वाँस के सदृश्य अनन्त हैं। तब अभ्यासी को मानों अपने मालिक के विराट् स्वरूप एवं अनन्त शक्ति से योग पाने का एक आधार, ऐसा मिल जाता है जिसका दैविक स्पंदन उसे बराबर स्मरण दिलाता रहता है कि उन चरणारविन्दु में ही तू पलने लगा है। अब साहस है तो उस सरस, दिव्य एवं विराट् मुखचन्द्र को देखने के

साहस है तो उस सरस दिव्य एवं विराट् मुखचन्द्र को देखने के

लिये मुख को ऊपर उठाने और मालिक की ही दिव्य-शक्ति का सहारा लें।

हम लोगों को जब से शाहजहाँपुर जाने का सौभाग्य मिला तब वसंतोत्सव के भंडारे के अतिरिक्त दूसरा उत्सव भी मिशन में मनाया जाता था जन्माष्टमी का। पहले दिन श्री बाबू जी महाराज व्रत रखते थे। शाम को मास्टर साहब घर पर ही गरीबामऊ प्रसाद यानी हलुआ बनाते थे और शाम को सात बजे ही पूजा होती थी और प्रसाद चढ़ाया जाता था। प्रसाद के पश्चात् चाय व हलुआ खाकर हम सभी प्राँगण में पड़ी खाटों व कुर्सियों पर आकर बैठ जाते थे यह क्रम सायद पाँच-छ: वर्षों तक चला था। जन्माष्टमी के दूसरे दिन अर्थात् जन्माष्टमी दोनों ही दिन मनाई जाती थी पापा अर्थात् रामेश्वर प्रसाद जी व्रत रखते और वे ही पूजा करवाते थे। हम लोग उसमे भी शामिल हो जाया करते थे। एक बार जब अचानक ही बाबू जी ने जन्माष्टमी के व्रत को यह कहकर छोड़ दिया कि जो चाहे व्रत करो या न करो।" तब कौतूहलवश हममें से किसी ने पूँछ लिया, कि "बाबूजी अब जन्माष्टमी का व्रत आप क्यों नहीं करते हैं?" तो साधारण सी मुखमुद्रा में इतनी बड़ी बात बोल गये कि जब कृष्ण की शक्ति ही लय हो गई तो जन्म किसका मनाये।" हम उस मुखारविन्दु की ओर ताकते ही रह गये। हम सब नासमझ थे क्या समझते। बस इतना ही समझ में आया कि कोई बड़ी बात हो गई है।

इसके भी कुछ वर्षों पश्चात उनकी ही कृपा से इस विषय में कुछ-कुछ मेरी समझ में आने लगा था। कि पहले जो हर बात पर, हर समय बड़े-बड़े लोगों के डिक्टेट्स आते रहते थे अब वह क्यों बन्द प्राय हो गये हैं। बात स्पष्ट हो गई थी अन्तर के समक्ष कि क्रमशः बाबू जी महाराज में जब पूर्ण भूमा की शक्ति अपने सुहावने स्वरूप में मुखरित हो उठी और क्रियान्वित हो उठी हो तब महत पुरुषों को अपनी आइडेन्टिटी का होश आया तो उन्होंने पाया कि स्वतः ही उन महत् लोगों के उठाये कार्य, शक्ति के सहित इस दिव्य-विभूति में स्वतः समर्पित हो गये हैं फिर जरूरत ही कहाँ रह गई थी डिक्टेट्स देने की क्रमशः जब से वह समस्त दिव्य-शक्ति भी उनमें लय हो गई तब से वह दिव्य-विभूति लाला जी साहब की दिव्य-हस्ती के साये में और भी पुलक उठी थी जिसे समर्थ सदगुरु अपनी अथक साधना से धरती पर उतार लाये थे। इतना ही नहीं उन्होंने अपने दिव्य-लाल अर्थात् श्री बाबू जी महाराज की पावन एवं दिव्य छटा को धरती के प्रांगण में छिटकते, संवरते व फैलते जाने के दृश्य को मानों अपनी दिव्य-दृष्टि के नजारे में भर लिया था इसलिए, कि मानों वे उस दिव्य-नजारे को दिव्य-लोक [Brighier-world में स्वीमिंग पाये हुये वासियों को दिखाने का प्रलोभन नहीं रोक पाये थे। इसलिए कि व भी जान सकें कि दिव्य आदि शक्ति को क्रियान्वित शक्ति का आधार आज बाबू जी के रूप में धरती पर स्थित हो गया है। भला अब आप ही बतायें कि कोई क्या कहे कि 'कौन थे वे।'

आज एक-एक करके मेरे मानस पटल पर मानों कोई दृश्य उभरते जा रहे हैं और यह लेखिनी भी तो दम नहीं लेना चाहती है। इसलिए मैं तो यही कहूंगी कि दोष तो इन दोनों का ही है। दृश्य को उभारने वाले मालिक का और रुकने का नाम न लेने वाली मेरी इस लेखिनी का भी। लेकिन मुझे कुछ ऐसा लगता है कि मानस पटल पर स्वयं ही लिखे गये चित्रों को उभारने वाले उन प्रिय जीवन सर्वस्व की आज यही मजबूरी रही होगी कि उनका कथन कि "मैं कोई भी राज, राज नहीं रखना चाहता हूं" के कारण ही जैसे साधारण मानव के हित में ऐसे दिव्य राज की झलक की उनकी ही कृपा ने हमारे समक्ष में स्पष्ट कर दिया है तभी तो यह पुस्तक समस्त के लिए उपलब्ध हो सकी है और यह लेखिनी तो दासी है स्वयं को अपने बाबू जी के हाथों में हारी हुई इसलिये वे जब चाहें इसे उठवा दें और जब चाहें रखवा दें। लाला का यह लाल युग का प्राण बन कर युग में समाया हुआ है। उनके द्वारा प्रवाहित प्राणाहुति का निरन्तर प्रवाह मानों युग के प्रवाह के साथ युग के प्राणों का स्पन्दन बन कर प्राणिमात्र के हृदय को स्पर्श कर रहा है। मुख्य केन्द्र अर्थात भूमा की शक्ति अपने श्री बाबू जी के दिव्य मुखारविन्द की दिव्य—ज्योत्सना से योग पाकर आज मानव मात्र के लिये सुलभ हो गई है। साथ ही एक बात जो हमारे दैनिक—जीवन की शिक्षा में व्यवहारिकता के लिये आदर्श बन कर खड़ी है वह है उनकी सादी और सरल दैनिक जीवन चर्या। सवेरे—शाम घर में पली हुई गाय के ऊपर हाथ

फेर कर थपथपाना, उसे पानी पिलवाना बैलों की नादों को साफ करवाना, सानी देखना आदि सभी कुछ मानों उनके कामों का अंश बन कर रह गये थे।

कभी—कभी उनकी कोई जिद भी उनकी दिव्य सुंदरता में चार चाँद लगा देती थी। एक बार की बात है कि जून में हम लोग शाहजहाँपुर पहुँचे। कई स्थानों के अभ्यासी भी वहाँ आये हुये थे। हमने देखा कि श्री बाबू जी प्रातः व सायं हरसिंगार फूल के पौधे में पानी डालते हैं बड़ी तत्परता से सफाई आदि करते हैं। जिसे देख कुछ हैरान हो कर किसी ने उनसे पूछा कि "बाबू जी, आप हरसिंगार में पानी देने में क्यों जुटे हुये है ?" आप धीमे से किन्तु दृढ़तापूर्वक बोले "दक्षिण भारत के लोगों को हरसिंगार के फूल बहुत पसंद हैं। वे यहाँ आने वाले है, खत आ गया है, सो मैं चाहता हूं कि उनके यहाँ आने पर इसमें फूल खिल जायें।" वह बोले, बाबू जी, इसमें तो फूल सितम्बर अक्टूबर में आता है।" बोले, "हमें इससे क्या, हमें तो फूल चाहिए।" हम लोग तब एक सप्ताह शाहजहाँपुर ठहरे थे। चार दिन बाद प्रातः देखा कि हरसिंगार के चार-पाँच फूल लिए हुए आप भीतर हमारे कमरे में आये और बोले, शुक्र है लाला जी साहब का कि अभ्यासी कल आ रहे हैं और यह फूल आ गये हैं।" देख कर हम सभी दंग रह गये। जो बाते विचार से भी परे थीं, उनके बारे

में सोचना ही क्या। लेकिन अपने अभ्यासियों के प्रति प्यार का यह नमूना कहीं दिल को कचोट रहा था।

अभ्यासियों की कमियाँ या अवगुण कुछ भी न देखते हुये आध्यात्मिक पथ पर हौसला बढ़ाते हुये ले जाना ही मानों उनका स्वाभाविक स्वभाव बन गया था। एक अभ्यासी ने जब अपने अवगुणों को उनके समक्ष रक्खा तो आपने इतने हल्के, सहज स्वर में कहा कि देखों तुमने मुझसे यह सब बातें कहीं और मुझ में जज्ब करने की ताकत मौजूद है तो जब अभ्यासी सच्चाई से मेरे सामने अपनी बातें कहता है तो मैं जज्ब करने वाली चीज खोल देता हूं चीज जज्ब हो जाती है फिर नालायकी रह ही कहाँ जाती है।" फिर बड़े मजे में बोले, "भाई, हो तुम बहुत होशियार, अब तो लायकियत ही तुम्हारे हिस्से में रह गई।" सुनकर हमारे अन्दर एक हौसला बढ़ जाता था, एक अजीब शक्ति पैदा हो जाती थी। कितना औदार्य था उनके अन्दर और साथ ही देने की अदम्य क्षमता थी।

हंसी और मौज के समय भी वे अपने कथन में कितने सतर्क एवं दृढ़ होते थे इसका एक नमूना याद आया। प्रश्न था कि यदि एक बहुत विद्वान व्यक्ति आपके सामने आ जाये तो आप उस पर कैसे काम करते हैं क्योंकि उसमें "अहं" भाव स्पष्ट रूप से सामने रहता है। आप तुरंत ही बोले, "मेरा सबसे पहला काम होता है कि उसकी विद्वता के आगे अपनी इच्छा शक्ति से एक आवरण डाल देता हूं क्यों कि जब तक वह

यह जानता रहेगा कि वह बहुत बड़ा विद्वान है तब तक उस पर किया हुआ काम खिलेगा नहीं।" पुनः धीरे से बोले, "जानते हो यह राज कि डिवाइन विल के आवरण का साया भी तो उनके अहं को पिघलाने में मदद देता है।"

उनके प्रेम का मोहक निमंत्रण हमारे हृदय को खरीद लेने के लिये मानों उनकी सरलता का एक उज्ज्वल नमूना ही था। आज भी मुझे स्मरण है कि मेरे ही काम के लिए मुझे बुलाने के लिए जो पत्र भेजा था उसका लेखन इस प्रकार था। खुद ने ही अपनी पोती की तरफ से लिखा था कि "मेरा मुंडन है, सबकी बुआ आ रही हैं, इसलिए मेरी बुआ को भी आना चाहिये।" भाषा बच्ची की ओर से थी और काँपते हस्त-कमल का लेखन उनके द्वारा देख कर बड़भागी हृदय मानों झरझर अश्रुओं से रो पड़ा था और अन्तरमन को पखार गये थे वे आँसू। उनके चरणों में रह कर मेरा मन आज तक यह निर्णय नहीं कर सका है कि देना कभी हुआ था या नहीं और पावना कहाँ समा गया था यह मालूम ही नहीं। यह ऐसे ही था जैसे भूखे का पेट। वे पाहुन बन कर आये थे और मालिक बन कर बिराज गये थे हृदय में मानों हृदय उनकी ही थाती थी। किन्तु कैसा निर्लेप था बाबू जी के रूप में वह पाहुन कि जिन पर न तो हमारी अश्रु वर्षा का प्रभाव होता था और न गुमसुम स्थिर अवस्था की स्थिरता का प्रभाव होता था। वे तो निरंतर अपने

कार्य मे रत थे और अपनी सतर्क दृष्टि की ही कैद में अपने बालक अर्थात् अभ्यासी को आजाद रखते थे। खुद को अभ्यासी से योग देकर भूल जाना तो मानों उनका सहज स्वभाव ही बन गया था। अब भला आप ही बताइये क्या आप समझ सकेंगे कि "कौन थे वे।"

अपनी दिव्यता का आड़ लेकर हम में खुद को खोलते जाना, ही मानों उनकी सहज आन पड़ चुकी थी इतना हीं नहीं फिर हमारी लेखनी से यह लिखवाते जाना कि यह मेरी हालत है। ऐसा अलौकिक खेल क्या कभी हमें देखने को मिल पाता ? यदि दिव्य शिक्षा को सहज पद्धति द्वारा हमारे हृदय की परतों को साफ करते हुये हमारे अंतस् में दिव्य गतियों को उतार कर हमें यह न बताते कि कौन सी गति की तस्वीर उन्होंने हमारे अंतर में उतार कर हमें धन्य कर दिया है तो हम कैसे जान पाते कि अनुपम चित्र का यह दिव्य चितेरा जैसा चाहता है वैसा रंग हमारे आध्यात्मिक सृजन हेतु हम में भर देता है। फिर खुश होकर कहते थे कि "लाला जी" का शुक्र है और तुम्हारा परिश्रम कि तुम्हारी आत्मिक गति में अमुक हालत जुड़ जाने से चार चाँद लग गये हैं। वाणी की मधुरता अपने माधुर्य को भूलकर उन पर इस तरह से न्योछावर हो गई थी मानों वाणी, वाणी न थी, मधुरता मधुरता न थी वरन् ऐसा लगता था कि मानों दिव्य-लोक से आई ध्वनि ही हमें झकझोरे जा रही थी।

ध्रुधा ही रात का भोजन वे देर से करते थे। हम सब लोग भी उनके व मास्टर साहब के भोजन करने के पश्चात तुरन्त ही खाना खाने बैठ जाया करते थे। भोजन समाप्त होते-होते प्रायः रात्रि के ग्यारह बज जाते थे। फिर उनके लिये लगाया हुआ एक पान लेकर हम सब बाहर चले जाते थे। गर्मियाँ होतीं तो वे बाहर के आँगन में टहलते और सर्दियाँ होती तो बाहर के बरामदे में पन्द्रह-बीस मिनट तक टहला करते थे। पीछे कमर पर हाथ रखकर खड़े हो जाते और हँसते हुए कहते—"भाई हम तो रजनीचर हैं, हमारा काम अर्थात् पत्र आदि लिखवाने का काम ग्यारह-बारह बजे से शुरू होता है।" सच ही फिर जो पत्रोत्तर लिखवाने बैठते तब बहुत ही मौज में होते थे। पत्र लिखवाते समय उनकी यह सख्त हिदायत होती थी कि लिखते समय बीच में हूं या अच्छा कोई नहीं कहेगा। यदि कुछ छूट भी जाता था तो फिर पत्र के समाप्त कर लेने के बाद ही पढ़कर उनसे पूछा जाता था। जैसा मैंने लिखा है कि जब कभी वे कुछ लिखवा रहे होते थे तो उन्हें देखने से ही लगता था कि वह कहीं और हैं जहाँ से बोल रहे हैं। बाहर अपने पूजा वाले कमरे में बिछी हुई मामूली दरी और उसके ऊपर पड़ी सस्ती मारकीन की चादर के ऊपर पूजा के कमरे में घुसने पर दरवाजे के ठीक सामने एक छोटी सी लकड़ी की डेस्क पर कुछ पत्र रखे रहते थे और उसके साथ ही रक्खी छोटी सी लकड़ी की चौकी पर ही रखकर लिखनेवाला उनके सामने बैठकर पत्र लिखता था उनके बैठने की

जगह एक छोटा सा, सूखा सा मृगचर्म बिछा रहता था। उसी पर दोनों घुटने मोड़ कर बैठे हुये वे, कहीं दूर स्थित रहते हुये पत्रोत्तर लिखवाते थे। उनकी वह छवि देख कर स्वयं को ही 'हाँ हूं' कहने का साहस नहीं होता था।

प्रारम्भ में जब हम लोग उनके पास शाहजहाँपुर जाते थे तो वापस आते समय वियोग की व्यथा से दिल फट कर आँखे बरस पड़ती थीं। एक बार मुझसे न रहा गया और एकान्त में उनसे पूँछ ही बैठी, "बाबू जी, क्या मिलने का यही आनंद है जो हृदय को व्यथा और आँखों को अश्रु वर्षा प्रदान करता है।" आप कुछ खोये से बोलते रहे, "बिटिया, यह मिलने का आनन्द नहीं बल्कि समझो कि बिछुड़े रहने की याद अब आई है। समय का अन्तराल कितने समय बाद जब बिछुडन के समय का हिसाब माँगता है तब जवाब के लिए हमारे पास मात्र हृदय की पीड़ा और आँख के आँसुओं के सिवाय कुछ नहीं होता है। अब तो तुम समझ गई होगी।" यद्यपि तब मैं तो कुछ न समझी थी लेकिन हृदय व आँखे जरूर कुछ समझ गई थीं। तबसे हृदय और आँखों ने बिछुड़न की पीड़ा से मानों समझौता कर लिया था क्योंकि मुझे तभी ऐसा लगा कि मालिक ने अपने प्यार की छलकन को शब्दों द्वारा मेरे हृदय में प्रवेश देकर बिछुड़न की व्यथा को कुछ कम कर दिया था और हृदय में सामीप्यता के सेंक का मानों मरहम सा लगा दिया था। आज जब उस दशा का रहस्य समक्ष में आया है तो ऐसा लगा कि

व्यथा तो तभी उभर कर उमड़ पड़ी थी जब हृदय को पता लगा था कि वह कौन है और किसका अंश है। हृदय के कपाट जब उनकी याद का वरण करके खुल जाते हैं, अन्तचक्षु जब उस द्वार पर आहट पाने का सौभाग्य ढूंढ़ते हुये अश्रु जल से उसे पखार कर उनके शुभागमन के लिए आतुर रहते हैं, तभी श्री बाबू जी के उस वाक्य का अर्थ समझा जा सकता है कि यह मिलने का आनन्द नहीं बल्कि समझो कि बिछुड़ रहने की याद अब आई है।' ऐसे उत्तर हमें मिला करते थे उनकी शून्य निगाह द्वारा।

कुछ ऐसा अलौकिक प्रभाव था उनकी नजरों का कि बहुधा जब उनका मुखमंडल शून्यता से देदीप्यमान होता था तो बड़े - बड़े विद्वान ज्ञानीजन आदि उनके समक्ष एक शब्द भी बोल पाने में असमर्थ हो जाते थे। एक बार भारत के राष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन जी से मिलाने के लिए श्री वरदाचारी जी, जो राधाकृष्णन जी की ही भाँति फिलासफर थे और उनके मित्र भी थे श्री बाबू जी को ले गये। तो डा० राधाकृष्णन जी भाई वरदाचारी जी से तो तपाक् से उठ कर मिले, किन्तु श्री बाबू जी की ओर उनका ध्यान नहीं गया। आप भी चुपचाप खड़े इन दोनों की बातें सुनते रहे। फिर जब वरदाचारी जी ने श्री बाबू जी का परिचय करवाया तो दोनों ओर से हाथ मिलाया गया और पूँछा क्या लेंगे आप आदि? जब आप घर लौट कर आये तो बोले, "डाक्टर, उन्होंने हमसे पूँछा कि आप क्या लेंगे तो भला मैं क्या बताता। हमारे लाला जी ने तो हमें घुर तक

की पावर एवं दशा बख्श देने का स्वामित्व दिया है किन्तु कुछ ले पाने के लिये मेरे अन्दर स्थान ही नहीं छोड़ा है, इसलिए उनके पूछने पर कि क्या लोगे मैं चुप रह गया उनका यह उत्तर सुनकर डा० वरदाचारी सहित हम सभी अावाक् खड़े उनका मुखमण्डल निहारते रह गये। फिर बोले—हमने आज दो महान फिलासफरों की बातें तो सुनी किन्तु भला मैं बीच में क्या बोलता क्योंकि इन्हें तैयार करनेवाले फिलोसफर थे और मुझे तैयार करने वाला सेन्ट था।"

देने का होसला तो उनमें खुद में ही लाजवाब था। एकबार अपने गुरुभाई करुणाशंकर जी को दरवाजे पर देखते ही श्री रामेश्वर प्रसाद मिश्र से बोल उठे "रामेसुर अबकी बार करुणाशंकर को "कुतुब" की हालत पर पहुँचाना ही है।" चतुर गुरुभाई ने कहा कि "भाई साहब, आपने सोच लिया है ?" तो तुरन्त बोले, जो देना ही है उसके लिए सोचना क्या।" पुनः बोले सोचने में यदि देने का मूड बदल गया तो लाला जी की बख्शीश को क्या पीछे कर देना न होगा, यह मैं नहीं कर सकता हूं। साध्वी के भाल पर दमकते टीके की तरह अपने लाला जी साहब के चिर सौभाग्य के द्योतक स्वरूप यह टीका अर्थात् श्री बाबू जी अपने सद्गुरू के मस्तक को गौरवान्वित करते हुये हमेशा आफताबे-मारफत बनकर विश्व को सदैव ईश्वरीय प्रकाश से देदीप्यमान बनाये रक्खेंगे यह ध्रुव सत्य है। सच तो यह भी है कि समर्थ सद्गुरू श्री लाला जी के दिव्य एवं विराट् गौरव का नाम ही बाबू जी हैं।

इतना ही नहीं गुरुभाइयों के प्रति आदर एवं प्यार का भाव उनके मन मे ऐसा था कि जिसका स्थान कोई दूसरा भाव ले ही नहीं सकता था। द्वार पर गुरुभाई को देखते ही उनका सामान उठाने स्वयं ही उठ खड़े होते। कभी भी नौकर से नहीं कहते थे। अभ्यासियों के आने पर तो मालिन अर्थात् नौकरानी सामान उठा लाओ कहकर स्वयं बैठ जाते थे। उनके गुरुभाइयों का कहना था कि "हमारे भाई साहब का दिया हुआ यह मान हमारे तथा अभ्यासियों के लिये अनुकरणीय है। यह कोरा मान नहीं है बल्कि उनका दिया हुआ यह मान हमारे अन्तर में मान अर्थात् अहं-भाव के मर्दन का कार्य भी करता है।" क्या कहा जा सकता है उनके दिव्य व्यक्तित्व के विषय में।

इतना सहज सादा एवं साँचा व्यक्तित्व था उनका कि किसी को भी बात की चुभन जरा सी भी न लग जाये इसलिए कभी भी तुम्हारे में यह कमी है जैसे शब्दों को व्यक्त ही नहीं होने देते थे। अभ्यासी के यह पूछने पर कि मैं ध्यान में रेगुलर नहीं बैठ पाता हूं, "तो आप ऐसे बोल उठते थे कि मानों वह अभ्यासी अपने बारे में नहीं बल्कि श्री बाबू जी के बारे में ही कह रहा हो। सुनकर बोले—"ध्यान में बैठने से तो मैं भी डरता रहा हूं एक बार मैंने देखा कि लाला जी मुझे ध्यान में बैठालने के मूड में हैं तो झट से मैंने उनके मुख की ओर देखने से ही नजर चुरा ली।" फिर बोले कि—थोड़ी देर में मैंने जरा-सी नजर उठा कर श्री लाला जी के मुख की ओर देखा तो लाला जी साहब मुस्कुरा दिये। बस मैं समझ गया कि

मेरी ध्यान में न बैठने की, चोरी पकड़ी गई है तो मैंने नजरें झुका लीं।" समर्थ सतगुरु तुरन्त बोले—"तुम अब ध्यान में बैठने के बहुत चोर हो गये हो।" तब बाबू जी अभ्यासी की ओर देखकर बोले—लेकिन भाई, यह तो मैंने अपनी साधना समाप्त होने के बाद ही किया था।" बस उनकी ऐसी ही बात से अभ्यासी मात खा जाते थे।

उनके व्यावहारिक जीवन के विषय में भी भला क्या कुछ कहा जा सकता है ? कौन पा सकेगा उसका छोर। समझ में तो वे सुख-दुःख सबमें शामिल लगते थे जिससे हम बहुधा हैरान से होते रहते थे। एक दिन एक अभ्यासी पूंछ ही बैठे कि 'बाबूजी सुख-दुख के बारे में आपका क्या विचार है ?" दिव्य-शराफत की भी निराली शान देखी है उनमें। अपने विषय में भला वे कैसे बोलते ? सहज स्वर में अपने को बचाते हुये बोले—"इस विषय में हमारे लाला जी का दिया हुआ जवाब लाजवाब है।" पुनः बोले—इनके बारे में हमारे लाला जी साहब ने अपनी ओढ़ी हुई शाल को दिखलाते हुए कहा था कि सुख-दुख इस शाल के दो छोरों के समान हैं। एक सिरा जो शृष्टि के यानी उत्पत्ति के उद्गम से जुड़ा हुआ है यह शाश्वत सुख एवं शान्ति का प्रतीक है इसका दूसरा सिरा या छोर संसार से जुड़ा हुआ है जो मानव के लिये दुःख का साया प्रतीत होता है। कभी हम एक सिरा ऊपर डाल लेते हैं, तो कभी दूसरा ओढ़ लेते हैं और वैसे ही सुख-दुख हमें प्रतीत होने

लगते हैं।" उनके इस कथन की सच्चाई में हमारे समक्ष इतना तो स्पष्ट कर ही दिया था कि धरती पर रहते हुए, गृहस्थ-जीवन यापन करते हुए मानव यहाँ के सुख-दुख से कैसे अछूता रह सकता है।

उनकी मामूली बातों के तरीके एवं साधारण बोल-चाल में भी कहीं न कहीं आध्यमिकता की झलक हमें अवश्य ही मिलती रहती थी। एक बार बड़ी मौज में बैठे थे। बोले -"भाई मैं सबसे कहता हूं कि ध्यान की गहराई में जाओ, पर मैं खुद इसके मायने नहीं जानता हूं।" फिर बोले —भाई ध्यान की सहज (Natural) अवस्था में आ जाना ही ध्यानकी गहन अवस्था है पुनः बोले ध्यान की सहज अवस्था की प्राप्ति के लिए प्रथम इसकी असहज को पार करना पड़ता है।" पुनः स्वयं ही मधुर कंठ से बोल उठे —'जानते हो ध्यान की सहज अवस्था क्या है ? "स्वयं ही ने उत्तर भी दे दिया" आत्मा का परमात्म-अवस्था में लय हो जाना ही ध्यान की सहज अवस्था है।" फिर बोले— "अब तुम पूछोगे कि ध्यान की असहज अवस्था क्या है ? तो जो बातें जो कहती ध्यान की सहज-अवस्था से हमें अलहदा रखती है अर्थात जिनसे भी हमें परमात्मा से अलगत्व का भाव मिलता है वह सब असहज ही तो है। यानी मैं तो यही कहूंगा कि सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर भी हमारी असहज-अवस्था का परिणाम ही तो है।" ऐसे समय हम चुप बैठे उनकी मधुर वाणी का रसास्वादनमुग्ध होकर करते रहते थे।

कभी हमारे मन के प्रश्नों के उत्तर भी वे अपनी ही ओर से वैसे ही प्रश्न करके दे दिया करते थे किन्तु हमारे मन में उठी जिज्ञासा को तो अनुभूति द्वारा ही हमारे समक्ष लाकर शान्त करना, यह भी हमें देखने को मिलता रहता था। एक बार मेरे मन में यह जिज्ञासा थी कि इतने अभ्यासियों में श्री बाबू जी कैसे यह जान लेते हैं कि अमुक को किस स्थान की सैर करानी है और ठीक समय पर हमें जो भी चाहिये होती है वही दशा हममें उभर आती है। इस बात को तीन चार दिन बीत गये। एक दिन रात को साढ़े ग्यारह बजे मुझे बुलाया तो मैं जा कर सामने बैठ गई। एक सेकेन्ड बाद ही जो सामने देखा तो देखती ही रह गई मानों वह पावन नजारा मन में चार दिन पहले उठी जिज्ञासा का प्रत्यक्ष स्पष्टीकरण था। समक्ष में मानों आध्यात्मिकता का सागर था। उसमें रह रह कर जो बुलबुले उठते थे, उन बुलबुलों में अभ्यासियों के मुख ऐसे उभर कर सामने आ रहे थे मानों वे उस पवित्र सागर से अपने लिए कुछ माँग रहे थे। दो मिनट मे ही वह दृश्य मानों उनमें ही समा गया था और साथ ही ले गया था वह मन जिसमें जिज्ञासा उठी थी। एकाएक उनके कंठ से निकली स्वर - लहरी मानों अपनी लहर में समेट कर मेरे मन को वापस ले आई थी। स्वर क्या थे मानों कर्ण - कुहरों में कोई आध्यात्मिक प्राण फूंक गया हो। 'अब तो समझ गई होगी।' भला इसका उत्तर ही मैं क्या दे सकती थी। मैं तो केवल इतना ही बोल सकी थी, लेकिन जो देखा था यह मानव - गम्य से परे है। याद आया कि श्री कृष्ण भगवान ने एक बार अर्जुन को मात्र

विराट-रूपदिखाया था और वह मुग्ध हुए से दृश्य देखते रह गये थे किन्तु आज मैंने सत्य का वह दृश्य देखा कि मानों हर हृदय उनसे ही आध्यात्मिकता का अपना भाग माँग रहा था। आत्मा, परमात्मा का अंश है यह दिव्य - दशा तो उनकी प्राणाहुति शक्ति के प्रवाह द्वारा मानव - मात्र के लिए ही आज सुलभ हो गयी है, और उससे भी उत्तम सत्य यह था कि ऐसी बख्शीश प्रदान करने वाली परम शक्ति श्री बाबू जी महाराज के रूप में मेरे समक्ष इस तरह से बैठी हुई थी मानों समर्थ सद्गुरु की दिव्य - प्रार्थना साकार रूप धर कर समक्ष में प्रगट हो गई थी। उनका दिव्य सौंदर्य जो उनकी दिव्य - छवि में चार चाँद लगा गया था वह यही है कि उन परम शक्ति को यह मालूम ही नहीं था कि वे कौन हैं। अलौकिक थी वह मुख मुद्रा जो दिव्य नूर से नहाई हुई थी।

अभ्यासियों की अतिरिक्त उन्नति के परम सौभाग्य पर तो कदाचित ऋषि-मुनि भी सिहाते होंगे। जब देश विदेश से बन्सत पचमी के पावन-पर्व पर आये हजारों की संख्या में अभ्यासी-गण शाहजहाँपुर यू० पी० में निर्मित वृहत् एवं अति सुन्दर आश्रम में एकत्रित होते थे वो भाँति-भाँति के रंगीन परिधानों से संवरे, भाँति-भाँति की भाषायें बोलते हुये हर तरफ मानों परमानन्द में डूबे हुये से लोग इधर - उधर घूमते रहते थे। छोटे-छोटे झुन्ड में बैठे अभ्यासी अधिकतर आध्यात्मिक विषयों की चर्चा में ही लगे रहते थे। आश्रम के प्रांगण में ही एक सिरे पर छोटी सी कैन्टीन भी उत्सव के समय लगती थी। द्वार के बाहर

पान की दुकानें भी थीं एवं छोटे छोटे खिलौनों को बेचने वाले भी दिखलाई देते थे। आश्रम में अनेक कमरे थे परन्तु फिर भी अभ्यासियों को ठहरने के लिए बड़े-बड़े कई शामियाने प्रांगण में लगवाये जाते थे। अलौकिक दृश्य होता था जो देखते ही बनता था इधर-उधर कहीं ध्यान में बैठे अभ्यासी भाई बहिनें, कहीं मालिक से शक्ति पा कर प्राणाहुति प्रदान करने की आज्ञा पाये प्रशिक्षक-भाईयों के चारों ओर बैठे कुछ पूंछते हुये या पूजा करते हुये भाई लोग यहाँ दिव्य-कृपा में डूबी हुई अवस्था में बैठे दिखाई देते थे। मातायें व बहिनें समस्त कार्य करती हुई भी मगन दिखलाई पड़ती थीं। अत्यधिक जाड़ा होने पर भी अभ्यासी लोगों का प्रयास यही रहता था कि सब नहा कर ही प्रातः ध्यान में बैठे। दूसरी बात यह भी थी कि प्रत्येक अभ्यासी यह चाहता था कि वह मेडीटेशन-हाल में ही बैठे जिससे हाल के डायस पर साधारण से कालीन पर बैठे अपने दिव्य-स्वरूप श्री बाबू जी महाराज जो स्वयं ही मानों ध्यान का मूर्तिमान रूप बन कर धरा पर उतर आये थे, वह उन्हें देख सके। जी ही नहीं भरता था, मेडीटेशन-हाल से उठने का तो मन ही नहीं होता था ऐसा चार्ज था वह दिव्य शक्ति से। ऐसा भी बहुधा होता था कि वे डायस से उठ भी जाते और हमें पता भी न रहता कि वे उठ गये हैं। जब कोई कहता कि 'अब तो बाबू जी उठ गये हैं हम भी चलें,' तब लगता था कि अब तक हम कहीं चले गये थे और अब वहाँ से लौटकर यहाँ आने पर होश आया है। वे रसोई-घर और

डायनिंग हाल, तथा अभ्यासियों के ठहरने की जगहों का भी चक्कर लगाते थे उनको देखते ही अभ्यासीगण एक-दूसरे को पुकारते हुये कहते कि 'देखो बाबू जी महाराज आ रहे हैं, तब हम ठिठक कर खड़े रह जाते थे और वे मुस्कुराते हुए, बातचीत करते हुये, हमारे पलक-पावड़ों को पावन बनाते हुये आगे निकल जाते थे।

इस प्रकार हम एक बसन्तोत्सव के समाप्त होते ही दूसरे बसन्तोत्सव के आने की प्रतीक्षा लिए अपने घरों को लौट पड़ते थे। बसन्तोत्सव का निमंत्रण तभी अनोखा ही होता था। पीले रंग के पोस्टकार्ड, पर किनारे लाल रंग के होते थे। अपने श्री बाबू जी की ओर से पाया हुआ यह कार्ड हम लोग बड़े संभाल कर रख लेते थे। मालिक की ओर से कार्ड में लिखी निमंत्रण की वे लाइनें भी हमें प्राणों से प्यारी लगती थीं। उसमें लिखा होता था कि 'बिरादरान, यह सूचित करते हुये मुझे हर्ष हो रहा है कि अबकी बार हमारे श्री रामचन्द्र मिशन का भंडारा हमेशा की तरह हमारे समर्थ सदगुरु श्री लाला जी साहब के पावन जन्मदिन अर्थात बसंतपंचमी के दिन मनाया जायेगा। मिशन के इस वार्षिक भंडारे में ज्यादा से ज्यादा अभ्यासियों को शिरकत करनी चाहिए। ताकि एक-दूसरे से परिचित होने का और साथ ही लाला जी साहब की डिवाइन-ग्रेस को भी प्राप्त कर पाने का सौभाग्य प्राप्त करें।' भंडारा पहले बसन्तपंचमी के दो दिन पहले शुरू होकर अर्थात एक सिटिंग शाम को, दूसरे

दिन दो सिटिंग्स फिर वसंतपंचमी के दिन दो सिटिंग्स तथा एक पूजा उसके प्रात: होकर समाप्त होता था। पहले कुल छ: सिटिंग्स हुआ करती थी परन्तु नौकरी करने वाले अभ्यासियों की प्रार्थना पर पाँच सिटिंग्स कर दी गई थीं। पहले तो हमें यह बात बहुत खटकी थी क्योंकि जी को यह लगा कि श्री बाबू जी के पास रहने का हमारा थोड़ा समय कम हो गया है पर सभी अभ्यासियों की सुविधा देखकर मन को समझा लिया गया।

एक बात तो लिखना भूल ही गई कि बसंतपंचमी का महोत्सव जब तक आश्रम का निर्माण न हुआ था यानी सत्रह-अठारह वर्ष बाबू जी के घर पर ही मनाया जाता था। तब बहुत ही आनन्द आता था। हम सब अभ्यासी भाई बहिन ही मिलकर सब्जी छीलते; दाल-सब्जी तैयार करते थे। उत्सव के लिए सब अभ्यासी भाई-बहिनों के एकत्रित होने से पहले चाय के साथ नाश्ते में खाने के लिए मुंगफली, मैदा के छोटे शकलपारे आदि बनाकर बड़े-बड़े पीपों में रक्खे जाते थे। पहले नाश्ता पत्तों से बने हुए दोनों में दिया जाता था और चाय मिट्टी के कुल्हड़ों में। यह सोचकर कि सारे महोत्सव का खर्चा श्री बाबू जी महाराज ही उठाते हैं, हम सभी प्रात: चाय पीकर कुल्हड़ धोकर रख लेते थे और रात में खाना खा लेने के बाद ही उसे फेंकते थे। पहले हम देखते थे कि पत्तलों में बचे हुये खाने को भी बाबू जी स्वयं उठाकर अपनी गाय को डालते थे अत: धीरे-धीरे हम सब भी यह

सीख गये कि खाना पत्तल में न बचायें । उत्सव की सब्जियाँ तो सब घर के बाहर पेड़ के नीचे चूल्हा बनाकर बनाई जाती थीं परन्तु रोटी और पूड़ी घर के अन्दर औरतें सेंकती थीं । आज भी वह दृश्य आँखों के सामने जब घूम जाता है तो मानों पुरानी यादें उस आनन्द को उभार कर समक्ष में बिखेर जाती हैं । रोटियाँ बेलने के साथ ही गाने की ध्वनि पूरी आवाज के साथ बहारें ला देती थी और उतने समय में न जाने कितनी बार श्री बाबू जी ड्योढ़ी में खड़े होकर बड़ी प्रसन्न मुद्रा में गीत सुनते रहते थे । खाना खाने के बाद सब मिलकर उनके सामने ही बैठते थे तब अक्सर याद किया करते थे कि हमारे लाला जी साहब भंडारे के समय घर के भीतर ढोलक भिजवा देते थे कि सब खूब गाओ बजाओ, बड़ी खुशी का समय है । इससे आगे जब बताते थे तब कभी-कभी उनके पावन नेत्रों में अश्रु छलक आते थे क्योंकि वह याद भी तो उनके प्राण अर्थात लालाजी की ही होती थी । कहते थे हमारे लाला जी साहब की आवाज में तेजी के साथ ही ऐसा माधुर्य एवं सम होता था कि जहाँ तक भी उनकी आवाज जाती थी मानों वातावरण ठहर सा जाता था । हम भूल जाते थे कि हम कहाँ बैठे हैं इतना ही नहीं, अपने परम-प्राण श्री लाला जी साहब की आवाज पर इतने कुर्बान थे कि एक अभ्यासी बहिन के गाने की आवाज को सुनकर चौंक कर बोले, 'अरे मास्टर साहब सुना तुमने, इसकी आवाज ऊपर चढ़ कर तो हमारे लाला जी साहब की आवाज से कुछ मिल जाती है ।' बस इसी

बात पर खुश होकर बहिन को आध्यात्मिक उन्नति का इनाम दे डाला। पुन: हँस कर बोले, 'मास्टर साहब, फकीरों के पास इनाम के अलावा देने को कुछ और होता ही नहीं है।

मैं अब आपके ध्यान को वहाँ लिए चलती हूं जहाँ पहुँच कर हम कभी भी वापसी नहीं चाहते थे। बसन्तपंचमी के पावन पर्व पर छ: सिटिंग्स में कितनी ही बार हमें वह अलौकिक मधुर ध्वनि सुनने को मिलती थी जिसके कर्ण-कुहरों में पड़ते ही मानों सुध बुध खो कर हम उस दिव्य ध्वनि के साथ ही दिव्य-लोक में पहुँच जाते थे। जब सूरदास का यह पद श्री बाबू जी की स्वर-लहरी के सहित हमारे कानों में पड़ता कि 'प्रभु मेरे अवगुन चित न धरो ''और इस पद की समाप्ति के दस-पंद्रह मिनट बाद ही पुन: दूसरे पद की झूमती हुई स्वर-लहरी हमारे कर्ण-कुहरों में समा कर मानों आत्मा को परमात्मा में मिला देने का जरिया बन जाती थी। पद था 'दीनन-दुख हरन नाथ, संतन' हित-कारी। इस पद की समाप्ति के कुछ मिनट बाद ही जब पूजा के लिए बस होता था तो ऐसा धक्का सा लगता था अंतर में कि क्यों बस हो गया और हमें अपने घर से वापस लौटना पड़ा। शाम की पूजा में अक्सर ही ट्रान्समिशन उनके गुरुभाई पं० रामेश्वर प्रसाद जी ही सबको दिया करते थे। पूजा के मध्य जब उनका ओजस्वी और प्रेम में डूबा, 'अश्रुओं से भीगा स्वर कानों में पड़ता तो लगता मानों कि प्रेम, मन के बंधन को भी तोड़ कर बाहर फैल जाना चाहता था। कभी जी चाहता कि चिल्ला उठें कि 'तुम्हारे बिना हम रह नहीं सकते हैं। 'परन्तु ऐसा

भी प्रतीत होता था कि बंधन से मुक्त करने वाले ने स्वयं ही अब यह बंधन हमें प्रदान किया है। बेड़ियाँ संसार की तो कट चुकीं थीं परन्तु हाथों को बाह्य में कुछ भी उस विषय में वैसा करने की स्वतंत्रता न थी क्योंकि मालिक बाह्य में अंतर के प्रेम की प्रक्रिया पर सदैव ही अंकुश रखना चाहते थे। उनका यह वाक्य कि 'हजारों समुद्र मारिफत के पी जाओ परन्तु मुख से यही निकले कि और लाओ और लाओ' हमें सदैव सचेत रखता था।

कभी-कभी सबको हँसाने के लिए किस्से भी सुनाया करते थे परन्तु उनके किस्से भी कुछ न कुछ शिक्षा ही लिए हुये होते थे। एक दिन बड़े खुश थे तो किस्सा सुनाने लगे। हम सब उस मुखारविन्द पर न्योछावर हुये से आस-पास बैठे थे। किस्सा शैतान का था बोले, 'एक महापुरुष टहलते हुये जब एक पुलिया को पार कर रहे थे कि अचानक उनका पैर किसी से टकराया। सिर झुका कर देखा और पूछा कि 'तुम कौन हो? वह बोला, 'मैं शैतान हूँ।' वे महापुरुष बोले, 'तुम शैतान हो और आराम से लेटे हुये हो?' शैतान बोला, मैंने अपने से हजारों बना दिए हैं इसीलिए अब आराम कर रहा हूं।' सुन कर हम सभी लोग हँसने लगे आप भी हमारी हँसी में शामिल थे फिर कुछ चुप रह कर बोले, 'देखो हमें तो लाला जी साहब से काम ही चाहिये ताकि उनकी निगाह हमारे ऊपर ही रहे।

एक बार कुछ भाइयों ने कहा कि 'बाबू जी, बुरा तो इंसान बहुत जल्दी बन जाता है लेकिन अच्छा बनने में बहुत समय लगता है क्योंकि

इसमें परिश्रम करना पड़ता है।' आप तुरन्त ही बोले, 'नहीं भाई, इंसान को गिरते-गिरते युग पर युग बीत गये तब जाकर वह गिर पाया है जानते हो ऐसा क्यों ? हम सब उनकी ओर देखने लगे तो बोले, 'जब इंसान नीचे की ओर गिरता है तो गिरने में मात्र उसकी शक्ति ही शामिल रहती है और उसकी ही बुद्धि एवं विचार शामिल रहते हैं। लेकिन जब हम पुनः उठना चाहते हैं, श्रेष्ठ स्तर पर पहुँचना चाहते हैं तो हमे ईश्वरीय शक्ति का सहारा मिलना शुरू हो जाता है। इतना ही नहीं ईश्वरीय शक्ति हमारे हित में क्रियान्वित भी रहने लगती है ताकि हम अपने निश्चय को पूर्ण करने में सफल हो सके इसलिये इंसान का निश्चय दृढ़ होना चाहिये।'

एक बार न जाने किस मस्ती में थे कि लगा झूम झूमकर कुछ गुनगुना रहे हैं। हम सब चुप हो कर सुनने लगे। शब्द थे—सब कहें राम-राम हम कहें सैया-सैया, सबके तो राम हैं, हमारे तो गुसैंया सैंया ।।' इसे सुनते सुनते हम भी झूम उठे थे। हम यह सुनते ही रहें, ऐसा जी में समाया था कि फिर बोले, 'मुझे यह शब्द बेहद पसंद है क्योंकि सती के लिए सैंया शब्द इतना निकट है कि ज्यादातर इस शब्द को वह सबके सामने नहीं कहती है।

कभी-कभी कुछ ऐसा जादू सा हो जाता था कि उसका अर्थ लगा पाना हमारे लिए तब सम्भव न हो पाता था। एक बार दोपहर में

आपकी आंख लग गई थी तो हम सब चुपचाप बैठ गये। पाँच मिनट बाद ही आप उठे बोले 'तुम पूजा में बैठ जाओ।' मुझे ऐसा लगा कि उनके बोलने के साथ ही मेरी पूजा अर्थात ध्यान टूट गया। इसी आशय को ले कर मैंने उनकी ओर देखा तो बोले, 'मेरी नींद के साथ जहाँ तक तुम गई थीं, "वहाँ इससे अधिक टिकना नामुमकिन था। इसके लिए ही अर्थात उससे उतारने के लिए ही मुझे ऐसा कहना पड़ा। 'भला कौन समझता उनकी हर पल की इस गाइडेन्स को जो हर समय हमारे लिए उनके जी में समाई रहती थीं। भला क्या कहा जा सकता है उनकी इस अहैतुकी कृपा के लिए।

कभी-कभी ऐसा भी होता था कि अपनी नासमझी से हम प्रेम की प्रतिमा स्वरूप अपने बाबू जी को बहुत कठिनाई में डाल देते थे किन्तु वे क्षमा की मानों सजीव प्रतिमा ही थे। हमारी बातों को ऐसी सरलतापूर्वक लेते थे कि मानों कुछ हुआ ही नहीं है. एक बार लखीमपुर के एक अभ्यासी भाई ने जो वकील थे, अपनी तमाम परिस्थितियाँ बताते हुये दुखी होकर कहा कि 'इसलिये हम रोज ध्यान भी नहीं कर पाते हैं।' कदाचित आप यह सुनना चाहेंगे कि यह लेखनी अब क्या कहने जा रही है। दया की वह सजीव मूर्ति श्री बाबू जी तुरन्त बोल उठे, ऐसा करो पुत्ती बाबू कि अपनी सारी समस्यायें तो हमें दे दो फिर तुम रोज पूजा में बैठा करो।' बेचारे वकील साहब इस कथन की गरिमा को क्या समझ पाते सहज ही बोल, उठे, 'हाँ बाबू

जी यह ठीक है।'' बाबू जी बोले, अच्छा आज तुम लखीमपुर जा रहे हो कल प्रात: ठीक नौ बजे तुम पूजा में बैठना और मात्र यही ख्याल करना कि मेरी सारी समस्यायें बाबू जी के पास जा रहीं हैं।' वकील साहब ने अच्छा कहा और लखीमपुर चले गये।

एक बात श्री बाबू जी की जागरूकता की दाद देती है कि ऐसी बात वे हमेशा तभी करते थे जब मास्टर ईश्वर सहाय जी नहीं होते थे। हम लोग तो बिलकुल नादान और नासमझ थे क्योंकि ऐसा कभी सुना या पढ़ा भी नहीं था कि ऐसा काम कोई महामहात्म्न कर भी सकते हैं। दूसरे दिन प्रात: नौ बजे ही आप नहा धोकर बाहर वाले पूजा के कमरे में चले गये और हम सब बाहर बरामदे में ही बैठे रहे। वैसे भी जब वे परम पूज्य हमें बुलाते थे तभी हम पूजा के कमरे में जाते थे। मास्टर साहब बरामदे में पड़े लकड़ी के तख्त पर बैठे मेज पर रख कर कुछ लिख रहे थे। श्री बाबू जी दस मिनट बाद ही जब कमरे से निकले तो हम सब डर कर खड़े हो गये। पूज्य बाबू जी का शरीर कुछ कांप सा रहा था और देदीप्यमान मुख मानों एक दम से निस्तेज हो गया था। देखते ही मास्टर साहब उनके निकट आये और पूंछने लगे कि 'क्या हुआ तब थोड़ी देर में कुछ संभलने पर मास्टर साहब को बताया कि 'हमने वकील साहब को पूजा के लिए समय दिया था शायद उसी वजह से ऐसा हुआ है।' मास्टर साहब बहुत गुस्सा हुये कि 'यह आप क्या कह देते हैं' तो बोले, 'जो बातें उनकी साधना में बाधक थीं मैंने ले लीं, अब वह ईश्वर का ध्यान रोज कर सकेंगे।'

मास्टर साहब तुरन्त बोले, 'बाबू जी, आपने तो ऐसा कर दिया है लेकिन वकील साहब अपना वादा भूल जायेंगे।' इसके तीन माह के बाद ही श्री बाबू जी पूर्ण रूपेण स्वस्थ हो सके थे। कहाँ मिलेगा प्रेम का ऐसा सजीव प्रतीक और किसमें होगी माँ से भी अधिक ऐसी ममता जो बालक के कष्टों को स्वयं खुशी से स्वीकार कर ले ?

एक दिन श्री बाबू जी बाहर आँगन में कुर्सी पर बैठे हुक्का पी रहे थे। हम सब उन्हें घेर कर इस प्रतीक्षा में बैठे हुये थे कि वे कुछ बोलें तो एकाएक वे बोले कि, "गलत धारणाओं को मैं नहीं पनपने दूँगा।" एक बार एक अभ्यासी के पूँछने पर कि आप हमारे संस्कार क्यों भोगते हैं ?' तुरन्त ही बोले, बेवकूफी की बात मत करो। हर तकलीफ संस्कारों का ही नतीजा नहीं होती हैं। जैसे एक बीमारी तो मानों किसी संस्कारवश हुई तो उसकी प्रतिक्रिया कई रूप में हमारे सामने आती है"। सभी प्रतिक्रियायें संस्कारवश तो नहीं हुई। दूसरे जो स्वयं संस्कार से परे है उसे कोई संस्कार दे ही कैसे सकता है लेकिन जब लय अवस्था अपने विशुद्ध रूप में आ जाये तब एक मुकाम जरूर आता है कि जब संस्कार अभ्यासी को छोड़ कर जिनमें अभ्यासी लय होता है, उनकी ही ओर रुख कर लेते हैं। कुछ संस्कार तो सद्गुरु की दृष्टि मात्र से जल जाते हैं, उन्हें वह भोगता नहीं है।" सहजमार्ग की सहजता एवं लय-अवस्था की महानता ही हमें ऐसे पावन दोराहे पर लाकर खड़ाकर देती है कि जहाँ श्री बाबू जी की कृपा से हम

आध्यात्मिकगतियों की अनुभूति के आनंद के भोग से भी भरे हो जाते हैं। कौन जानेगा कि ऐसी यह दिव्य गति आज प्राणिमात्र के लिए सुलभ हो गई है।

अक्सर ही देखने को मिला है कि दिव्य-विभूतियों को विश्व में शान्ति स्थापना के लिए कार्यरत होना पड़ता है। कदाचित अवतार भी इससे अलग नहीं रह पाये होंगे क्योंकि अनेक बार हमने श्री बाबू जी महाराज को अचानक डिवाइन—मूड में देखा है और यह कहते हुये सुना है कि "चुप हो जाओ, चीन की लड़ाई हो रही है और नेचर का अमुक हुकुम है" या कभी बांगला देश के बारे में स्वत: ही कहने लगते कि "अगर ऐसा हुकुम है तो ऐसा ही होगा।" लेकिन तब क्या हुआ और उन्होंने क्या किया, यह जानने या पूँछने की तमीज तब हममें थी ही नहीं।

'मास्टर साहब, हमारी महफिलें तो रात के ग्यारह बजे बाद ही शुरू होती है' मुस्कुराते हुये वे कहते, और इस महफिल के सदस्य कौन होते थे हम ऐसे लोग कहते हुये आज भी आँखे भर आती हैं कि ऐसी दिव्य-विभूति एवं दिव्य तेज के प्रतीक श्री बाबू जी ने सीधे सरल मानव की तरह हम, नितान्त नादान, नासमझ बच्चों को अपनी महफिल का सदस्य कहा। आज यह भाव रह-रह कर मन को मथ जाता है कि किसने ममत्व के संपूर्ण रस का सागर उनमें उड़ेल दिया था।

कैसे सजाया होगा उस शून्य की गरिमा को भी गौरवान्वित करने वाले बाबू जी महाराज के दिव्य स्वरूप को। किस चतुर चितेरे ने अपने मन-प्राण की तूलिका से संवारा होगा उनका वह बाल्यवत, पावन एवं भोला स्वरूप। किसने उस शून्य दृष्टि में भरा होगा संपूर्ण विश्व का चित्र यह कह कर कि अब इसे तुम्हें ही संवारना और उबारना है। बड़भागी तो हम प्राणिमात्र हैं कि समस्त में लिए श्री लाला जी साहब ने उन्हें सुलभ बनाकर हम सबको उन्हें ही सौंप दिया है।

हाँ तो महफिल में नवा साहब का हुक्का चल रहा था जैसा कि अक्सर श्री बाबू जी हँस कर हमें बताया करते थे कि 'देखो, लाला जी साहब कहते हैं कि नवाब साहब, अब काम की बातें कब होंगी।' फिर तुरन्त ही गंभीर होकर दो मिनट बाद बोल उठते, 'भला बताओ, नेहरू जी में जीवन की रक्षा करना है, यह तो ऊपर का आर्डर है और कुछ सोचने का भी समय दिया नहीं है। बस काम कल ही होना है नहीं तो कुछ का कुछ हो जायेगा।' हम लोगों की उत्सुकता तो सीमा पार कर गई थी कि ऐसे में श्री बाबू जी महाराज क्या करेंगे। उस बार हम लोगों के उकसाने पर मास्टर साहब जी ने श्री बाबू जी से पूछ ही लिया कि 'हुजूर फिर आपने कैसे पूरा किया यह काम।' अपनी सहज-वाणी में वे बोल उठे, 'करना भला क्या था, उस शहर में भूचाल ला दिया जिससे समय टल जायेगा और नेहरू को मारने का भेद खुल जायेगा। दूसरे दिन प्रातः हम सभी ने अखबार में पढ़ा कि कलकत्ते में

हम सभी ने अखबार में पढ़ा कि कलकत्ते में भूलाल आ गया और एक दल के लोग जो नेहरू जी पर अटैक करने की साजिस करने आये थे पकड़े गये। पढ़कर हम सभी उनके बड़प्पन एवं शक्ति की जागरूकता देखकर दंग रह गये थे।

अक्सर ही ऐसा होता रहता था कि हम उन दिव्य-पुरुष की बातें जो समझ से परे होतीं थीं, कैसे समझ पाते। किन्तु उनकी वाणी हमें विमोहित कर जाती थीं। सुधि लौटने पर जब हम यह याद करते थे कि क्या कहा था उन्होंने, तो कुछ याद नहीं आता था बस हाथ मलकर रह जाते थे कि काश उस समय हमारे पास टेप-रिकार्डर होता। न कैमरा न टेप-रिकार्डर कुछ भी नहीं था हमारे पास। टेप के स्थान पर थी मात्र हमारे मन प्राणों की एकाग्रता और कैमरा के स्थान पर था उनके मुखारविन्दु का वह निर्दोष भोलापन एवं सरलता जो स्वयं ही उनके दिव्य स्वरूप को हमारे हृदयों में अंकित कर गया था। भला ही उनके भौतिक-पावन रूप को वह चित्रित न कर सका हो।

कभी रहस्य की बात हमें बताते थे पर उनके कहने के लहजे में तो लगता था कि मानों वह कोई रहस्य ही नहीं है। एक दिन बोले—गांधी जी के मृत्यु का दुःख पूरे देश को बहुत हुआ है परन्तु दक्षिण अफ्रीका में जब गांधी जी को मारा गया था तभी उनके जीवन का अंत था। उस समय एक संत ने ही नेचर के आर्डर के अनुसार गांधीजी

को अपनी लाइफ ट्रांसफर की थी क्योंकि गांधी जी को अभी वह कार्य करना था जो उनके अलावा कोई नहीं कर सकता था। उस संत की कृपा के लिए भी क्या कहा जाये उन्होंने खुशी से अपना जीवन गाँधीजी को ट्रांसफर कर दिया था। गाँधी जी ठीक हो गये किन्तु उनके चेहरे पर 'महात्मा' का तेज तभी से व्याप्त हुआ था और उनके अंतर ने भी तब से कैसा परिवर्तन पाया यह रहस्य आज कौन समझ पायेगा।'

एक-एक करके उनकी वे बातें मानों समक्ष में चित्रित होना शुरू हो जाती हैं। मुझे आज स्मरण आ रहा है कि उस दिन जब हम सब बाहर के दालान में उनकी कुर्सी के समाने बैठे हुए थे, तब शायद वैज्ञानिकों द्वारा प्रथम अन्तरिक्ष यान छोड़ा गया था। वह कैप्सूल से अलग हो गया था और जुड़ नहीं पा रहा था कि एकाएक बोले 'चुप रहो, हमारे यान वालों का जीवन खतरे में है।' बस कुछ क्षण ही बीते होंगे कि बोले 'हमारे वैज्ञानिक तो जोड़ नहीं पा रहे थे, तब हमारे लाला जी साहब ने हुक्म दिया कि यह काम तो तुम्हें करना है, बस बन्दा तो हाजिर ही रहता है सेवा में। अब कैप्सूल जुड़ गया है और यात्रियों का जीवन खतरे से बाहर है।' कहकर सहज रूप में हुक्का पीने लगे। हमें तब और आश्चर्य हुआ जब बोले—'भाई, समाचार सुना रेडियो में पाँच मिनट बाद ही समाचारों में आया कि 'कैपसूल यान से जुड़ गया है और वैज्ञानिकों की बहुत प्रशंसा की गई थी।' और श्री बाबू जी तो 'सबहिं मानप्रद' आप

अमानी' की भाँति समाचार सुन कर चुपचाप हुक्का पीते रहे किन्तु हम सब तो उनके मुख पर कुछ पढ़ने का असफल प्रयास कर रहे थे।

बात उस समय की है जब हमने मिशन नया-नया ही ज्वाइन किया था। श्री बाबू जी महाराज के यहाँ कोई घरेलू मुकदमा चल रहा था। केस अपनी सीमा पर था और मुकदमे के कुछ प्वाइन्ट बाबू जी के कमजोर पड़ रहे थे। वकील श्री बाबू जी से कह रहे थे कुछ झूठ बोलने के लिये, पर वे इसके बिलकुल खिलाफ थे। वकील को ऐसा लग रहा था कि झूठ बोलने को राजी नहीं किया जा सकेगा। वकील ने एक चाल खेली बोले—बाबू जी झूठ बोलने के बाद लाला जी साहब का नाम ले लेना सो पाप धुल जायेगा। किन्तु बड़े ही गम्भीर व ओजस्वी शब्दों में बाबू जी बोले—मेरे पास जब उन्हें देने को कोई पुण्य नहीं है तो पाप भी कैसे दे सकता हूं और याद रखिये "लाला जी दुनिया के गुनाह माफ कर सकते हैं किन्तु मेरा एक झूठ माफ नहीं करेंगे।' पुनः बोले—जानते हो क्यों? क्योंकि लाला जी साहब ने कहा है कि दुनिया के सब गुनाह माफ कर सकता हूं परन्तु तुम्हारी एक गलती भी नहीं क्योंकि तुम्हारी एक गलती का जहर विश्व के वातावरण में फैल जायेगा। तुम दोषहीन ऐसे हो कि सारी दुनिया के प्राणियों को दोषों से मुक्त कराने आये हो ईश्वरीय-शक्ति का सहारा देकर। तुम गलती कर भी तो नहीं सकते हो क्योंकि तुम ताज भूमा से

आये हों जहाँ धरती का साया भी नहीं पहुँच सकता है।' वे ओजस्वी एवं बुलन्द आवाज में कहे शब्द सदा हमारे कानों में पड़ते रहें, हम आतुर से इसी प्रतीक्षा में रहते थे। पुनः बोले—'पाप सन्त से हो चाहे पापी से ही पाप, पाप ही रहेगा, पुण्य नहीं हो सकता है और झूठ झूठ ही रहेगा चाहे किसी के भी मुख से निकले। उनके विषय में भला क्या कहा जा सकता है कि जिनके मुख से शब्द-धारा मानों कहीं दूर से बहती चली आती थीं। वह थाटलैस परसनैल्टी (विचारशून्य-व्यक्तित्व) जिसके माध्यम से आनेवाली विचार-धारा एवं शब्द-धारा मानों शून्य का मार्ग तय करके जब नेचर से जुड़ जाती थी तब शब्द विचारों को संजोकर सहज ही उस पावन मुखारविन्दु से झर उठते थे।

सर्दियों के दिन थे। परम-जीवन सर्वस्व श्री बाबू जी बाहर बरामदे की टीन के नीचे बैठे हुये थे। सभी अभ्यासी उनके इर्द-गिर्द बैठे हुये थे। कोई तख्त पर, कोई चारपाई पर, कोई कुर्सी पर और कुछ जमीन पर ही बैठे उनकी खामोशी टूटने की प्रतीक्षा कर रहे थे क्योंकि कुछ पहले ही कुछ अभ्यासियों में यह बहस चल रही थी कि मिशन के अर्थ में लगाया गया पैसा चाहे नम्बर दो का ही हो तो वह भी एक नम्बर का हो जायेगा। बहस के मध्य श्री बाबू जी बिलकुल शान्त बैठे हुए थे किन्तु बहस समाप्त होने के बीस-पच्चीस मिनट बाद हुक्का एक किनारे रखकर अचानक अपने

आप ही बोल उठे 'अभ्यासी होते हुये भी लोग कैसी बातें करते हैं कि मिशन में लगाने से नम्बर दो का पैसा नम्बर एक का हो जायेगा। अपने बच्चों को आपने दो की गिनती का एक और का एक की गिनती को दो करके बताया है ? ऐसे विचारों से ही आगे मिशन में खराबी आने का अंदेशा हो जाता है। हमारे लाला जी साहब के मिशन में यह खराबी कभी नहीं रह पायेगी। कहने को वे चुप थे: हमें कोई भी सम दम नियम तप आदि करने को कभी नहीं कहते थे किन्तु ऐसी शिक्षा हमें पग-पग पर उनसे मिलती रहती थी जो तप से श्रेष्ठ आध्यात्मिक जीवन का प्राण थी, आज भी अन्दर में उनका खटकते रहना ही हमें सहज-मार्ग पर सीधा चलते रहने को बाध्य करता रहता है।

किसी ने पूंछा— बाबू जी' आप हमें तप करने को नहीं कहते हैं ?' उनका सीधा सरल व सहज उत्तर मानों हमारे हृदय के कोने को स्पर्श करता हुआ सुनाई पड़ता है कि 'तप से हमें अपना अर्थात् ईश्वर से अलहदा अस्तित्व का ध्यान रहता है क्योंकि इसका आधार भौतिक एवं सीमित होता है। जबकि सहज-मार्ग का अभ्यास हमें अपने अर्थात् स्वतः स्वरूप के ध्यान एवं भौतिकता से अलग रखने का ही तरीका है अर्थात् ध्यान एवं अभ्यास ईश्वर से योग पाने का होता है और इसकी सफलता हृदय में अविचल-भक्ति के प्रवाह द्वारा ईश्वर के ध्यान में तन्मय रहने से ही सम्भव हो पाती है, तप से नहीं।' सुनकर आवाक् बैठी मैं सोच

रही थी कि इन दिव्य-महाविभूति के अलावा भला कौन हमें बताता भेद का इस बारीकी को।

एक दिन एकाएक श्री बाबू जी बोले—'जहाँ चाह है वहाँ राह है इसका मतलब जानती हो।' उस समय लगा कि जो जानती थी वह भी अब भूल गया था बस पास मे थी तो उनके मृदु-मुख से निकले वचनों के सुन पाने की आतुरता। पुनः वे स्वयं ही बोल उठे—कि जहाँ चाह है, इसमें जरा सा बदल दो तो आध्यात्मिक-अर्थ स्पष्ट हो जायेगा अर्थात् चाह ही राह है जो सहज-मार्ग की जान है।' इन सादे से लगने वाले किन्तु मानव-मात्र के प्रति प्यार में पगा यह शब्द कानों में पड़ते ही हम सब निहाल हो गये। उनकी शब्दावली सादगी की जान थी। पुनः आगे और बताया कि चाह चाहे सबको ले चलने की हो चाहे स्वयं चलने की हो, फायदा एक सा ही होगा' फिर अम्मा की ओर मुख करके बोले हमने अच्छी बात बताई हैं न ?' ह तो लगा कि मानों चारों ओर प्यार का सागर ही छलक कर अन्दर तक कहीं हमें भी भिगो गया था।

कैसा अचम्भा होता था कि जब वे चुप होते थे तो ऐसा लगता था कि सारा वातावरण ही विचाराहीन होकर मौन हो गया है और जब वे अपने सहज भाव में फैली हुई सुषुप्त ईश्वरीय धारा मानों चारों ओर प्रवाहित हो उठी हो। एक शाम हम सभी उनके इर्द-गिर्द बैठे हुये थे। आपस में बातचीत चल रही थी और वे चुप होकर शान्ति के

प्रतीक से बने बैठे हुये थे। सारा वातावरण मानों उनके मुखारविन्दु से निकली दिव्य फुलझड़ियों से झरते हुए शब्दों का चयन करने की प्रतीक्षा में थ कि दो नये लोग वहाँ आये। दो अभ्यासी भाइयों ने उठ कर उन्हें कुर्सियाँ दे दीं। दोनों सज्जन, अभ्यासियों के मध्य हुई वार्ता को सुनने लगे थे। थोड़ी देर बाद उन्होंने बाबू जी महाराज से प्रश्न किया कि 'आपकी संस्था तो आध्यात्मिक संस्था है नहीं क्योंकि जो बातें अभी हम सुन रहे थे, उनमें ईश्वर की कोई चर्चा ही नहीं थी। जहाँ आत्मा-परमात्मा की बात न हो वह संस्था आध्यात्मिक नहीं कही जा सकती है। वहाँ तो मात्र आपके विषय में बातें होती रहीं।' हम सभी स्तब्ध से रह गये कि इसका उत्तर क्या होगा? तभी देखा परमधीर-गम्भीर वाणी में श्री बाबू जी महाराज बोल रहे थे कि, भाई हमारी संस्था ही मात्र आध्यात्मिक संस्था है क्योंकि इसमें ईश्वर प्राप्ति ही हमारा लक्षण है। मेरे गुरू महाराज ने हमारी सहज-मार्ग पद्धति में इस लक्ष्य की पूर्ति हेतु हम मानवों के अन्तःकरण को अपनी इच्छा शक्ति द्वारा ईश्वरीय धारा का प्रवाह देकर इसे पावन बनाते हुये ईश्वर-प्राप्ति के योग्य बनाने में सुदृढ़ सहारा भी दिया है। ईश्वरीय शक्ति का पावन प्रवाह प्राणाहुति-शक्ति से पुलक उठते हैं। हमारे मिशन की प्रार्थना की अंतिम लाइन में यह लिखा भी है कि बिना तुम्हारी सहायता तुम्हारी प्राप्ति असम्भव है। हमारे यहाँ पूजा करना ही मात्र लक्ष्य नहीं है बल्कि ईश्वर प्राप्ति का लक्ष्य है। यदि हन बात करने

बालकों का लक्ष्य मात्र मैं हूं और मुझे यह मालूम नहीं है कि मैं क्या हू तो इन्हें कोन लक्ष्य तक ले जायेगा। लेकिन ईश्वर प्राप्ति का लक्ष्य ही मेरे सहज-मार्ग का जीवन है जिसे पूरा कराने के लिए ही मैं आया हूं इसलिये यह जिम्मेदारी मेरी है। मैं नहीं चाहता कि लोग मूर्ति पूजा में ही अटके रह जायें भले ही वह सद्‌गुरू का ही स्वरूप क्यों न हों। मेरे बारे में बात चलने से स्वतः ही प्राणाहुति का प्रवाह अभ्यासियों को मिलने लगता है, और वह मेरे लाला जी की मेहरबानी है।' तब मैं समझ सकी कि आत्मिक लक्ष्य को कभी मानव स्तर तक सीमित नहीं रहना चाहिए। सद्‌गुरू चरणों में सटे हुये उनकी नज़रों में छाये हुये ही चलते रहना चाहिये तभी आध्यात्मिक सफर तय करके पूर्ण लक्ष्य को पाया जा सकता है।

अपने अभ्यासियों में हौसला भरना और हौसले को भी गौरवान्वित करते रहना मानों उनका स्वाभाविक स्वभाव ही बन गया था। कदाचित वे परम पूज्य हमारे चेहरों पर सदैव उत्साह और मुस्कान ही देखना चाहते थे। एकबार एक बहिन ने बाबू जी को इक्यावन रुपये दिये। श्रीं बाबू जी महाराज ने वापस करते हुये उससे कहा कि देखो घर जाकर इन्हें मेरे बच्चों में बांट देना, उनकी जरूरत पूरी करना। यह सुनकर वह बहिन थोड़ी दुखी हुई। उसने सोचा यह राशि बहुत कम है क्योंकि उनसे पहले ही एक धनवान अभ्यासी ने उन्हें पाँच सौ रुपए दिए थे और उन्होंने रुपये रख लिए थे। परम पूज्य ने उसके चेहरे का भाव पढ़कर कहा कि देखो, इनके पास तो लाखों की

सम्पत्ति है। उसमें से उन्होंने पाँच सौ रुपया इस तरह से दिये जैसे इतनी राशि फेंक दिये जाने पर या खो जाने पर इनके लिए कुछ गम ही न हुआ हो। और हमारे तुम्हारे लिए यह इक्यावन रुपये भी गिनना महत्त्व रखते हैं कि इनके निकल जाने पर तुम्हारे व बच्चों की जरूरत में मानों एक खालीपन आ जायेगा। अतः मेरे अपने ही बच्चों का यह एक रुपया, जो उन्होंने पुनः उस बहिन से माँग लिया था, लेकर कहा कि 'यह मेरी खुशी को लेकर तुम्हारे उस खालीपन को भर देगा। मालिक तुम्हें बरकत दे।' सुनते ही बहिन की आँखों से अश्रुधारा बह निकली जिसने शायद उसकी जरूरत की खाली झोली को आनन्द-अश्रुओं से भर दिया था और उसका चेहरा खिल उठा था।

गर्मी के दिन थे, दोपहर के ग्यारह-बारह बजे भी बाहर बरामदे में ही बैठे थे श्री बाबू जी महाराज। भीषण गर्मी को ललकारते हुये बिना पंखे के मक्खियों के बैठते झुण्ड को बराबर अपने अँगोछे से उड़ाते हुए वे बरामदे में निर्विकार से बैठे रहते थे। अचम्भा हमें यह देखकर होता था कि उनके सामने व इर्द-गिर्द बैठे हम सबको भी गर्मी की तपिश मानो स्पर्श ही नहीं कर पाती थी। कदाचित इसीलिये कि उन्होंने हमारे जी की तपिश को हर लिया था। बारह बजे होंगे कि शहर के जाने माने एक डाक्टर आकर उनके सामने की कुर्सी पर बैठ गये। दुआ सलाम होने के बाद उनमें ऐसे ही घरेलू बातें होती रहीं। न जाने कौन सा विषय छिड़ने पर डाक्टर साहब ने पूछा, बाबू जी

सुना है कि मंत्र के प्रभाव से आदमी मुग्ध हो जाता है ?' वे तुरन्त बोल उठे, मंत्र तो मुग्ध करता है किन्तु मेरा सिस्टम मुग्धावस्था को तोड़ कर मानव को लक्ष्य के प्रति जागरूक करता है।' डाक्टर ने पुनः पूछा, 'बाबू जी, मंत्र-सिद्ध हो जाने का क्या अर्थ होता है ?' वही धीरे-गंभीर मास्टरी भरा स्वर हमें पुनः सचेत कर गया, और बाबू जी बोले, मंत्र की सीमित शक्ति का ठहर जाना ही मंत्र सिद्ध होने की दशा है। 'सुन कर हम सब एक बार फिर मानों अतीत में डूब गये और उनके सामने डूबने का अर्थ जानते हैं क्या होता था कि अतीत में ही डूबकर खो जाना। डाक्टर साहब चुप हो गये थे तभी एक अभ्यासी भाई ने पुनः पूछा कि 'बाबू जी, ध्यान कब अपनी चरम सीमा पर पहुँचता है ?' उत्तर तो मानों प्रश्न पूंछते ही उनके सामने अपना हल स्वयं ही बिखेर देता था। बोले, 'जब उसे अर्थात ईश्वर को हमारा ध्यान रहने लगता है। आज भी जब याद अतीत को टटोलने लगती है तो मन ऐसा गुम हो जाता है कि उनके साथ व्यतीत किये क्षणों के आनन्द को छोड़ कर वापस नहीं लौटना चाहता है। वर्तमान आध्यात्मिक-दशा एवं आनन्द उसे पुनः पुकारता है। परन्तु मन बेचारा क्या करे, उस परमानन्द को क्या कभी पीठ भी दी जा सकती है ?

एक बार कुछ घरेलू चर्चा चल रही थी। न जाने क्या सोच कर अम्मा बोलीं, 'तुम्हारी तो बात निराली है बाबू जी, इतने बड़े

महात्मा और पुराना सा अंगौछा, पुरानी ही चप्पलें और दुबला-पतला शरीर है। जब कि महात्मा तो खूब मोटे होते है तो हँस कर बोले, 'अम्मा, पुराना अंगौछा और इस पुरानी चप्पलें पहनने वाले को लाला जी साहब ने आध्यात्मिकता को कैसा धनी बना दिया है कि 'सहज मार्ग' सिस्टम द्वारा आज मै उस परमधन'को समस्त में बाँट रहा हूं। 'फिर अपनी सहज मुद्रा में मुस्कुराते हुये बोले, 'है न अम्मा इस पुराने अंगौछे और पुरानी चप्पलें पहनने वाले का महत्व।' आज भी न जाने कितनी बार परमानन्द में डूबी उनकी वे महफिलें समक्ष में आकर कुछ न कुछ बोलती रहती है और यह लेखिनी उन्हें समेट पाने को सदैव सदैव सचेत एवं तत्पर रहती है कदाचित उनके ही संकेत पर।

मैंने इस पुस्तक में स्थान-स्थान पर अपने श्री बाबू जी महाराज की निगाह के विषय मे शून्य शब्द का देने का ही प्रयोग किया है, और आज इसकी विशेषता को स्पष्ट कर देने का भी विचार है। बार-बार इस विषय में भी कुछ लिखने के लिए विवश कर रहा है। भला क्या लिख सकेगी मेरी लेखिनी इस विषय में बस उनकी' ही कृपा लिखवायेगी।

जब से मालिक ने लेखिनी को मेरे हाथ में दिया है इस पुस्तक लेखन के लिए, तब से ही उनकी शून्य-निगाहें भी मेरे समक्ष कुछ इस तरह से घूमती रही है कि यदि मैं कुछ समय तक उनकी ओर टकटकी बाँधे

देखती रहती तो ऐसा लगने लगता था कि मानों एक सम्बे मरुस्थल को पार करके उनकी निगाहें इस पुस्तक के लिए प्रेम का नीर लेने कहीं गई हैं और मेरी निगाह उसी प्रतीक्षा में डूबी रही कि मानों वह अब लौटा अब लौटी। कदाचित अब उसके लौटने पर उस पावन प्रेम के नीर की वर्षा में ही यह पुस्तक लिखी गई है। भला बतायें कि अब मैं यह भी कैसे कहूं कि वे निगाहें शून्य थी। मुझे आज भी भली प्रकार स्मरण है कि जब मेरी लेखिनी उनके गुणों के गायन में गीत की वह लाइन लिख रही थी कि दिव्यता भी हार जाती थी तभी देख तेरा मुख' तब भी समक्ष में उनकी शून्य-निगाहें मानों प्यार की ही वर्षा कर रही थी। शायद इसी आशय को लेकर अपनी एक आध्यात्मिक दशा के बारे में उन्हें लिखने पर उन्होंने मुझे लिखा था कि ऐसे कितनी ही चटियल-मैदान अर्थात रेगिस्तानी हालतों को पार करके ही वतन की राह मिलती है। तभी उसी उस अविनाशी का निर्झर-स्रोत मिलता है जिससे लय हो कर रहते हुये भी हम डूब नहीं पाते हैं और डूबने को कोशिश करने में हमारी निगाहें भी शून्य होकर रह जाती हैं।

卐

# दिव्य-फुलझड़ियाँ

इस प्रिय पुस्तक का उपसंहार कभी नहीं होगा। जब तक सृष्टि चलती रहेगी उनकी दिव्य-फुलझड़ियाँ विश्व की आत्मा को गुदगुदाती रहेंगी। परिणाम स्वरूप वे फुलझड़ियाँ मानव-स्मृतियों में इस प्रकार उभरती रहेंगी मानों वे स्मृतियों में इस प्रकार उभरती रहेंगी मानों वे स्मृतियाँ स्वयं ही बोलना चाह रही हैं। ऐसा उपसंहार पाने का सौभाग्य क्या किसी रचना ने कभी पाया होगा? कौन धरती पर उतार लाया था उस दिव्य, मधुर एवं सतत मुस्कान को। जब यह रहस्य मानव के समक्ष दृष्टिगोचर होगा, तब मौज की उन पावन बहारों को समेट कर हमारी झोली में डाल देने का सौभाग्य भी तो उनको ही हमें बख्शना पड़ेगा। ऐसा एवं इतना प्यार, मात्र समर्थ श्री लाला जी साहब के और हमें कौन दे सकता था फिर देता भी तो वही जो जान देने मे समर्थ है। इतना ही नहीं उनका कैसा यह दैविक उपकार था हमारे ऊपर कि उन शून्य निगाहों में प्राणि-मात्र का नक्शा उभार कर उनके समक्ष उनके चरणों में हमे फैला दिया है। समर्थ के इस प्यार की गरिमा स्पन्दन ने ही हमें श्री बाबू जी जैसी दिव्य विभूति के चरणों में पहुँचा दिया। उनके समक्ष आज हमारा सम्पूर्ण जीवन ही श्रद्धामयनत हो गया है।

अपनी इच्छा शक्ति द्वारा दिव्य ईश्वरीय शक्ति से निरन्तर हमारे हृदयों को स्नान कराते हुये हमारे श्री बाबू जी महाराज प्राणि-मात्र को अपने विराट-हृदयों में समेटे रहें, यही प्रार्थना है। निरन्तर दिव्य फुलझड़ियों से झरते फूलों के सदृश अपनी प्राणाहुति के प्रवाह से आध्यात्मिकता के इस सहज मार्ग को स्वच्छ करते हुए हमें अनन्त-पथ अर्थात 'भूमा' की ओर बढ़ पाने का साहस भी प्रदान करते रहें क्योंकि वहाँ पर प्रवेश साक्षात्कार की भी सीमा पार हो जाने पर ही मिल पाता है। दिव्यता के इस सलोने संगम में प्रवेश देने की समर्थ शक्ति श्री बाबू जी महाराज की इच्छा शक्ति में ही निहित है जो सरस्वती की धारा के सदृश, मुख्य कार्य करती हुई भी अदृश्य के सदृश ही रहती है। पुस्तक के रूप में आज यही भेंट है मानव मात्र के हित के लिए, जो युग को आमंत्रित करती रहेगी 'भूमा' के द्वार में प्रवेश पाने के लिए।

पृथ्वी पर बुराई के संहार के लिए तो सदैव ही अवतार आते रहे हैं परन्तु श्रेष्ठ आध्यात्मिक-गतियों की प्राप्ति के बाद मध्य बाधक रूप में आये 'सूक्ष्म अहं' का संहार दिव्य-विभूति के बिना भला कौन करता। इस रहस्य को खोल देने के लिये ही 'मालिक' ने इस लेखनी को इस पुस्तक के सृजन का सौभाग्य प्रदान किया है कि "कौन थे वे।"

अन्त में मैं यही कहूंगी कि इन अलौकिक-फुलझड़ियों का दिव्य-प्रकाश धरा से ले कर क्षितिज तक को सदैव दिव्यता से जगमगाता रहेगा।

# कौन थे वो ।

कौन थे, वो कौन थे, कैसे कहें वो कौन थे ।
एक दिन जब सामने आये, तो समझे कौन थे ।।

दर्द मानव का छुपाये, लाल 'लाला' का बड़ा ज्यों,
मानों चिर बिजई वो योद्धा, सृष्टि का गहना सजा ज्यों,
मन वियोगी हो उठा जब तब ये समझे कौन थे ।।

हृदय में ममता का सागर और नजरें शून्य थीं,
सादगी भी मिलन का मानों लिये संकेत थी,
मुस्कुराया भोलापन जब तब ये समझें कौन थे ।।

प्राण बन कर जब समाये तब लगा हम जी उठे थे,
सिर झुका चरणों में था पर मन कहाँ और हम कहाँ थे,
फिर कभी लौटी न सुधि जब, तब ये समझे कौन थे ।।

इस कदर हम थक चुके थे, भाव भी भूले थे अपना,
ले गया किस देश में कैसा सुहावन था वो सपना,
कुतुब पे चढ़ के पुकारा तब ये समझे कौन थे ।।

ड्योढ़ी में जब आन पहुँचे, दर्श में जब थे समूचे,
राह हमसे खो गई अरु हद की हद भी हो गई थी,
सामने मुस्कुराया कोई, तब ये समझे कौन थे ।।

मापी जा सकती है सागर की गहराइयाँ भी कभी,
पर न मापी जा सके, उस प्यार की छलकन कभी,
शून्य बन कर जब खड़े थे, तब ये समझे कौन थे ।।

सात्विकों का चलता-फिरता वह अनूठा रूप था,
जज्बा उनमें अजब था, डग-डग में थिरके दिव्यता,
कोई रह पाये न 'उन' बिन, तब ये समझे कौन थे ।।

जनक लाला जी थे उनके; आदि-शक्ति माता उनकी,
सृजनहारा कौन था, बस ये ही जाने मर्जी उनकी,
बसन्त आया जब हमारा, तब ये समझे कौन थे ।।

'संध्या' युग को भूल जाए, वो भले ही सृजनहारा,
किन्तु कैसे भूलते ये जग की आँखों के है तारा,
तेज में जब कुल समाया, तब ये समझे कौन थे ।।

卐